खण्ड -1

Block-1

इकाई -1संगीत नृत्य एवं नाट्य : अर्थ उद्देश्य एवं महत्व

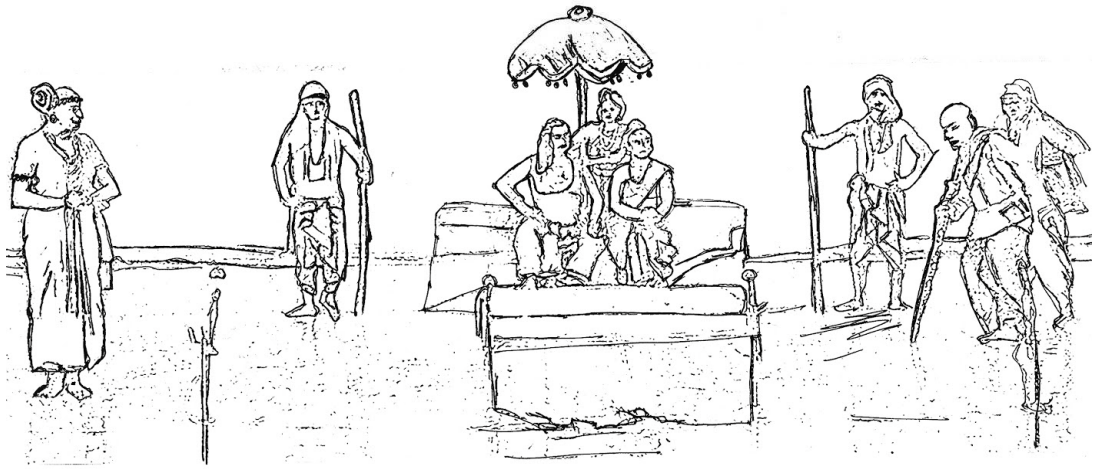

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 संगीत: अर्थ, उद्देश्य एवं महत्व

1.3.1 संगीत: अर्थ एवं उद्देश्य

1.3.2 संगीत का महत्व

1.3.3 विद्यालयी पाठ्यक्रम में संगीत शिक्षा का महत्व

1.4 नृत्य: अर्थ, उद्देश्य एवं महत्व

1.4.1 नृत्य अर्थ एवं उद्देश्य

1.4.2 नृत्य का महत्व

1.5 रचनात्मक एवं सृजनात्मक पाठ्य सहगामी गतिविधियों के उद्देश्य एवं महत्व

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

मान लीजिये कि हमारा देश भारत एक मंच है तथा हम सभी उस वृहद् मंच पर अपनी-अपनी भूमिकाएँ निभाते पात्र।कोई पात्र ढोलक बजाकर नाच रहा है तो कोई ढोल की थाप पर गायन कर रहा है, तो कोई अपनी उमंग में वंशी बजा रहा है, तो कोई स्वयं कृष्ण की भूमिका में उपदेश दे रहा है तो कोई समूह बनाकर महारास की तैयारी में जुटा है।निश्चित ही यह दृश्य अपने आपमें अनोखा होगा।

हाल में ही किसी विद्यालय के वार्षिकोत्सव में जाने का सौभाग्य मिला। वहाँ संगीत के शिक्षक-शिक्षिकाओं ने हमारे देश के विभिन्न वर्गों द्वारा मनाए जाने वाले त्यौहार उत्सवों को विभिन्न नृत्यों, गीतों के माध्यम से बच्चों द्वारा प्रस्तुत करवाया- उदाहरण स्वरुप मकर-संक्रान्ति में पतंगबाजी से सम्बन्धित गीत और नृत्य, होली पर ढोलक की थाप पर नृत्य, ईद पर कव्वाली आदि। अत्यन्त चित्ताकर्षक प्रस्तुतियाँ बच्चों द्वारा की गई। इस प्रकार उस नृत्य-गीत विशेष में भाग लेने वाले विद्यर्थियों ने इस माध्यम से अनेक चीजें सीखीं,जैसे- उस पर्व विशेष पर गाए जाने वाले गीत, परिधान संस्कृति, भाषा, स्वानुशासन में रहकर प्रस्तुति करना आदि।यदि आप भी इस प्रकार हमारे देश के या अन्य देशों के गीत-संगीत, नृत्य, नाट्य की सूचि बनाकर उनकी क्रमशः प्रस्तुति करने का प्रयास करें तो पाऐंगे की सूची का अन्त ही नहीं।इतनी विस्तृत, विशाल धरोहर है हमारी संस्कृति, संगीत, नृत्य, नाटकों की।भारतवर्ष अत्यन्त समृद्ध संस्कृति एवं सभ्यता का संवाहक है। यहाँ का संगीत, नृत्य, नाटक, अपने आपमें इसके हजारों वर्षों के इतिहास को समेटे हुए हैं। संगीत, नृत्य, कला, नाटक इस देश की सभ्यता का अभिन्न अंग रहे हैं।

यहाँ के विभिन्न प्रदेशों के लोक-गीत एवं लोक नृत्यों को देखकर उस प्रदेश-विशेष की संस्कृति, बोली, रहन-सहन, वस्त्राभूषण आदि के दर्शन होते हैं। अपने देश के संगीत और संस्कृति की

अदभुत छटा देखकर मन मयूर आनन्दित होकर नृत्य करने लगता है तथा दर्शक नृत्य करने लगता है तथा दर्शक, श्रोता स्वयं भी उसी भाव से ओत-प्रोत होकर उमंग से भर जाते हैं। यहाँ के महान नाटककारों के नाटक अभिनीत कर भी इस देश की संस्कृति को जीने का अवसर प्राप्त होता है।

1.2उद्देश्य

इसइकाईकेअध्ययनकेउपरांतआप -

1. संगीतकेअर्थ,उद्देश्यएवंमहत्वकोस्पष्टकरसकेंगें।
2. विद्यालयीपाठ्यक्रममें संगीत शिक्षा के महत्व को बता सकेंगें।
3. नृत्यकेअर्थ, उद्देश्यएवंमहत्वकोस्पष्टकरसकेंगें।
4. रचनात्मक एवं सृजनात्मक पाठ्यसहगामी गतिविधियों के उद्देश्य एवं महत्व को स्पष्ट कर सकेंगें।

1.3संगीत: अर्थ, उद्देश्य एवं महत्व

1.3.1 संगीत: अर्थ एवं उद्देश्य

संगीत को मानव जीवन एवं व्यवहार का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। इसका सीधा सम्बन्ध मानव के भावनात्मक स्तर से होता है। मानव के दुःख या सुख दोनों ही स्थितियों में संगीत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

संगीत जिसमें गायन, वादन, नृत्य तीनों समाहित हैं आदिम काल से मानव मन की आत्मिक सुखानुभूतियों अथवा दुःख के प्रकटीकरण का माध्यम रहा है। यह मानव के लिये संजीवनी रहा है। शिशु जन्म लेते ही रोता है, उसके मुख से रोने के स्वर निकलते हैं यद्यपि संगीत से वह अनभिज्ञ रहता है किन्तु सांगीतिक उपकरण स्वर तथा हृदय के स्पंदन के रुप में, लय तो उसके पास रहते हैं जो सदैव क्रियाशील रहते हैं

संगीत के प्रमुख उपकरण स्वर तथा लय है। कहते हैं - स्वरः माता लयःपिता स्वर माता के समान दुलारने का कार्य करता है वहीं लय पिता की भाँति अनुशासित करता है। संगीत की शिक्षा ग्रहण करने से स्वानुशासन अर्थात स्वयं पर अनुशासन सहजता से किया जा सकता है।

संगीत शब्द ''गीत'' में सम् उपसर्ग लगाकर निर्मित हुआ है। गान के साथ नृत्य व वादन के साथ किया हुआ कार्य ''संगीत'' कहलाता है। शारंगदेव कृत संगीत-रत्नाकर में ''संगीत'' को गीत, वाद्य तथा नृत्य इन तीनों का ''समुच्च'' या ''सेट'' कहा है।

''नाद'' संगीत का आधार है भारतीय दर्शन-शास्त्र के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टिा संगीतमय है, नादमय है ''नाद को ''ब्रह्म'' ''ईश्वर स्वरुप'' कहा गया है तथा नाद की उपासना को मोक्ष-प्राप्ति का

सर्वोत्कृष्ट साधन कहा गया है। ''नाद'' का अर्थ ''ध्वनि'' है। नियमित आन्दोलन-संख्या वाली ध्वनि जो कर्ण मधुर, कर्ण प्रिय तथा चित्त को प्रसन्न करने वाली हो, संगीतोपयोगी हो, को ''संगीत'' की भाषा में ''स्वर'' या ''नाद'' कहते हैं। वहीं अनियमित, कर्ण कटु ध्वनि- ''कोलाहल'' या ''शोर'' है। ''ध्वनि'' भौतिक विज्ञान से सम्बन्धित घटना है।

किसी वस्तु पर आघात करने से, चाहे वह वस्तु, विशेष प्रकार से कम्पित होती है, यही कम्पन, आन्दोलन कहलाता है। 'नाद' नियमित कम्पन या आन्दोलन तथा नियमित काल वाली ध्वनि है।'नाद' सुनने के लिये वातावरण का होना आवश्यक है, क्योंकि वातावरण वह माध्यम है जिससे यह तरंगे हमारे कानों तक पहुँत पाती हैं। अगर वातावरण न होता तो हम सुनने में असमर्थ रहते।नाद दो प्रकार का होता है - 1. आहत 2. अनाहत।'नाद' से वाणी का जन्म हुआ है। समस्त संसार का व्यवहार वाणी या भाषा पर आधारित है, यह तो आप जानते ही हैं।वाणी का ही मधुर प्रस्फुटन संगीत है।आप जानते हैं कर्णप्रिय नाद या स्वर- वह अनुरणात्मक नाद है जो रंजक हो, श्रोता को सुख प्रदान करे तथा मन के सुख-दुःखादि को अभिव्यक्त करने में सहायक हो।

वर्तमान समय में भारतीय संगीत में शुद्ध स्वरों की संख्या सात मानी गई हैं इनके नाम क्रमशः षड्ज, रिषभ, गन्धार, मध्यम पंचम, धैवत और निषाद हैं। जिन्हें सारे, ग, म, प, ध, नि कहा जाता है।इन स्वरों को दो प्रकारों में बाँटा गया है - 1- शुद्ध 2. विकृत।प्रत्येक स्वर की एक निश्चित आवृत्ति होती है। शुद्ध स्वर उसे कहेंगे जो अपने मूलभूत स्थान पर स्थित है। विकृत स्वर वह है जो अपने मूल-स्थान से विचलित हो जाता है रे, ग, ध, नि स्वर ऐसे स्वर हैं जो शुद्ध तथा विकृत दोनों अवस्था में प्राप्त होते हैं। 'सा' तथा 'प' स्वर अविकृत और अचल स्वर माने गए हैं।

1.3.2संगीत कामहत्व

संगीत का उद्गम निस्तब्धता से होता है। शान्ति ही संगीत का हृदय है। शान्ति संगीत में अन्तर्निहित है। संगीत का जन्म शान्ति से हुआ है स्तब्धता से हुआ है। स्तब्धता का मूल अनहद है जिसका श्रवण योगी, ऋषि ध्यान की अवस्था में करते हैं। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिये मन की एकाग्रता की आवश्यकता होती है।

संगीत-शास्त्र के अनुसार लौकिक संगीत की उत्पत्ति 'आहत-नाद' से मानी गई है। आहत-नाद आघात करने से उत्पन्न होता है वहीं अनाहत या अनहद, ध्यान की अवस्था में योगियों को सुनाई देता है। संगीत में निहित शान्ति का गुण जीव मात्र को शान्ति देता है। संगीत के द्वारा व्यक्ति में सन्तोष, दया, करूणा, धैर्य आदि गुणों का विकास किया जा सकता है। संगीत एक अत्यन्त प्रभावकारी विषय है। अपनी प्रभावकारी शक्ति के कारण यह मानव की भावनाओं को गहराई तक प्रभावित करता है।मानव मन तथा शरीर को स्वस्थ रखने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है।

संगीत, समाज का अभिन्न अंग है। समाज में हमेशा से ही संगीत का उपयोग विचारों एवं आदर्शों को समाज के समक्ष रखने के लिये किया जाता रहा है।संगीत व्यक्ति में स्वानुशासन का

विकास करता है, जिससे व्यक्ति समाज में हिंसक व्यवहार असामाजिक व्यवहार न करे। संगीत मानव जीवन की प्रमुख आवश्यकता है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व में सौम्यता, धैर्य, दयालुता लाता है और व्यक्तित्व में निखार लाता है।

संगीत व्यक्ति को शान्ति, आत्मिक संतोष, ताज़गी से परिपूर्ण कर जीवन को उत्साह तथा उल्लास से भर देता है। संगीत-स्मरण-शक्ति में वृद्धि करता है तथा कल्पनाशक्ति का विकास करता है। संगीत चरित्र को उन्नत बनाता है। मनुष्य में प्रेम, उदारता, एकाग्रता, साहस, आशा, दानशीलता, भक्ति-भाव सहृदयता आदि भावनाओं का विकास करता है तथा क्रोध, ईष्र्या, द्वेष, अधीरता आदि दुर्गुणों का नाश करता है। यह मानव को दानव होने से बचाता है। समूह में कार्य करने, सहनशीलता आदि गुणों का विकास कर व्यक्ति को संवेदनशील बनाता है।

संगीत के प्रमुख उपकरण ''स्वर'' तथा ''लय'' मानव को प्रकृति द्वारा प्राप्त है शिशु जन्म लेते ही रोता है। यहीं ''स्वर'' से उसका पहला साक्षात्कार होता है। शिशु के हृदय की धड़कन में ''लय'' है।

संगीत नैसर्गिक रुप से हृदय के संवेगों को प्रकट करने की कला है। गाँवों में शिशु जन्म के समय गाए जाने वाले सोहर गीत, विभिन्न संस्कारों जैसे- मुण्डन, कर्णछेदन, विवाह आदि पर गाए जाने वाले गीत। कपड़े धोते समय धोबियों के गीत, किसानों के गत पत्थर या भार उठाते समय श्रम की थकान को मिटाने के लिये गाए जाने वाले श्रमिकों के गीत, बच्चों को सुलाते समय गाये जाने वाली लोरियाँ आदि सभी समय में संगीत के महत्व को दिखाते हैं। संगीत एकान्त के क्षणों में, दुःख में, थकान के क्षणों में मानव का मित्र बनकर उन क्षणों को आनन्ददायक बना देता है।

संगीत तनाव दूर कर निद्रा लाने में सहायक है यह तो आप जानते ही होंगे। मधुर संगीत सुनने से मन शान्त होता है तथा जीवन में नियमित संगीत सुनने तथा गाने से मन तथा शरीर दोनों स्वस्थ रहते हैं।

ऐसी सुन्दर विद्या को अगर कक्षा में उपयोग किया जाय तो निश्चित ही बच्चों में स्वानुशासन, आत्मविश्वास, धैर्य, दयालुता, स्मरणशक्ति, कल्पनाशक्ति सहनशीलता, सर्जनात्मकता आदि सद्गुणों का विकास होगा

1.3.3 विद्यालयीपाठ्यक्रममेंसंगीतशिक्षाकामहत्व

संगीत जीवन का अभिन्न एवं आवश्यक अंग है जिसका आनन्द बालक, युवा, वृद्ध सभी अनुभूत करते हैं। संगीत हमारी संस्कृति को समृद्ध करता है। यह हमारी संस्कृति का दर्पण है। यह हमारे इतिहास को जानने का स्रोत है।

संगीत एक ऐसी कला है जो विभिन्न अवधारणाओं तथा कौशलों का मेल है जो हमें प्रेरित करने, कल्पना करने तथा अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम है।

यह एक प्रायोगिक कला, क्रियात्मक गतिविधि है जिसमें, शरीर तथा मन का एक साथ समन्वय होता है तथा तदुपरान्त संगीत प्रस्तुति होती है।

संगीत विद्यालयीय पाठ्यक्रम का अभिन्न एवं आवश्यक अंग होना चाहिये। संगीत बच्चों में कलात्मक जागरुकता, आत्मभिव्यक्ति, आत्मसम्मान की भावना, आत्मविश्वास तथा विभिन्न संस्कृतियों का सहजता से विकास करता है। यह बालक के व्यक्तिगत, सामाजिक, मानसिक तथा शारीरिक विकास में महत्वपूर्ण है।

मन तथा शरीर के मध्य समन्वय विभिन्न हस्त संचालन सम्बन्धी गीतों, गीत समन्वित खेलों नृत्य तालों पर आधारित खेलों व तत्व अथवा निर्देशों के अनुकरण या स्वरलिपि के वाचन से होता है।

वाणी का विकास स्वर ध्वनियों पर कार्य करने से होता है तथा स्वरोच्चारण, बालगीतों के गायन तथा श्वास पर नियंत्रण से होता है। विभिन्न भाषाओं के गीत विभिन्न शब्दों, ध्वनियों को ध्यानपूर्वक सुनने तथा उनके अन्तर को समझाने के फलस्वरुप होता है। श्रवण कौशल का विकास संगीत के माध्यम से अत्यन्त सहजता से किया जाता है जो बच्चे में किसी भी विशय के ध्यानपूर्वक अध्ययन व श्रवण की प्रेरणा देता है।

गीतों को सीखकर याद करना बच्चे में स्मरण शक्ति की वृद्धि करता है। संगीत की कक्षा में बालक समूह में तथा एकल गीत गायन करता है गीत के शब्द टूटें नहीं अतः बच्चों को अध्यापक श्वास नियंत्रण द्वारा विश्रान्ति काल की शिक्षा देते हैं। यह शिक्षा बच्चों में धैर्य की भावना विकसित करती है।

संगीत शिक्षा के क्षेत्र में हुए विभिन्न शोधों से स्पश्ट होता है कि जो विद्यार्थी संगीत की शिक्षा ग्रहण करते हैं वे विद्यालय जाने में ज्यादा दिखाते हैं तथा विद्यालय छोड़ने की प्रवृत्ति उनमें कम देखी गई।

संगीत शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थी सामुदायिक सेवा के कार्यों में अधिक रुचि दिखाते हैं तथा उनमें अपना समय टेलीविजन देखने में व्यतीत करने में कम रुचि देखी गई। □ बच्चों में विद्यालय के प्रति उचाट का भाव कम देखा गया।

संगीत बच्चों में सहयोग की भावना का विकास करता है तथा अपने विचारों की अभिव्यक्ति में आत्मविश्वास बढ़ाता है।

सृजनात्मक कला होने के कारण यह बच्चों में विध्वंसक प्रवृत्ति तथा असामाजिक प्रवृत्त नहीं आने देता। स्वरों का अभ्यास एकाग्रता में वृद्धि करता है। यदि विद्यार्थी संगीत का श्रवण करते हुए अन्य विषयों का अध्ययन करें तो उनकी विषय को स्मरण रखने की शक्ति प्रखर होगी।

विभिन्न शोधों से यह ज्ञात होता है कि संगीत वादन अथवा कक्षा में अध्यापक के साथ स्वर मिलाने अथवा नाटकों में हिस्सा लेने से बच्चों की सीखने की क्षमता तथा ज्ञान ग्रहण करने की क्षमता पर सकारात्मक प्रभाव होते हैं।

संगीत मानव को प्रकृति प्रदत्त देन है। एक बालक-बालिका के लिये संगीत एक अनुभूति है जिसमें वह सतत् क्रियाशील भागीदारी करता है। जब सुन्दर एवं मनमोहक, ध्वनि तथा प्रभावकारी लय, ताल उत्प्रेरक का कार्य करते हैं तो हमारी □न्द्रियाँ सक्रिय तथा जागृत होती है। कर्णेन्द्री स्वर, ताल के प्रति सचेत होती है, स्पर्शेन्द्री क्रियाशील होती है तथा सुन्दर संगीत तथा लय बालक के मन मस्तिष्क शरीर को प्रभावित करता है। परिणामतः गहरी भावनात्मक अनुभूति होती है। यह अनुभूति

उस क्षण विशेष की सृजनात्मकता में वृद्धि करती है। बालक, वयस्को की तरह भावगोपन या भावनाओं पर नियंत्रण नहीं कर सकता अतः जब संवेग तीव्रता के साथ आते हैं तो परिणामस्वरुप प्रतिक्रिया स्वरुप वह गायन तथा नृत्य करता है। अतः एक बालक के लिये संगीत का सार एवं आन्तरिक आल्हाद का, नृत्य गायन के द्वारा, बाह्य प्रकटीकरण है, अभिव्यक्ति है। संगीत एक ऐसी गतिविधि है जो बच्चों के मानसिक विकास के साथ ही उनके शारीरिक विकास में भी सहायक है। अतः गीत तथा ताल, लय तथा उसमें अन्तर्निहित गति शारीरिक रुप से अक्षम बच्चों की माँसपेशियों को तनाव से राहत पहुँचाने, उनके मन तथा शरीर में सामजस्य स्थापित करने तथा भावनात्मक तनाव को बाहर निकालने में तथा सृजनात्मक आत्मभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करता है।

गायन तथा सुशीर वाद्यों जैसे-शहनाई, बाँसुरी, क्लैरनेट आदि का वादन श्वसन तंत्र को सुदृढ़ करता है तथा फेफड़ों की सामर्थ्य एवं शक्ति तथा श्वास नियंत्रण को बढ़ाता है।

संगीत में अन्तर्निहित लय, ताल, स्वर श्वसन तंत्र संचरण तंत्र तथा तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करते हैं। विद्यालयों में विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का विकास करने से संगीत शिक्षा अपना अमूल्य योगदान कर सकती है। संगीत की शिक्षा प्राप्त करने के दौरान विद्यार्थी अपनी अन्तर्निहित क्षमताओं का विकास कर सकता है तथा समाज में बेहतर नागरिक बन सकता है।

1.4 नृत्य: अर्थ, उद्देश्य एवं महत्व

1.4.1 नृत्य: अर्थएवंउद्देश्य

अनन्त काल से मानव अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये विभिन्न कलाओं का आश्रय लेता रहा है। मानव अपने दुःख-सुखादि भावों की अभिव्यक्ति हेतु माध्यम की तलाश में रहा है यह तो आप जानते ही हैं कि अपनी प्रसन्नता की अभिव्यक्ति बालक-बालिका, नृत्य के माध्यम से करते हैं। यह नृत्य उन्हें सिखाने की आवश्यकता नहीं होती। वे सहज रुप से, नैसर्गिक रुप से अपनी प्रसन्नता, आनन्द की अभिव्यक्ति नृत्य के माध्यम से करते हैं। हम सभी प्रसन्नता, उल्लास के अवसरों पर नृत्य करते हैं। इससे शरीर में उर्जा का संचार होता है तथा उल्लास द्विगुणित हो जाता है, सकारात्मक का भाव बढ़ता है।

मानव ने अपनी आनन्दानुभूति को सदा नृत्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया।नृत्य भाषेतर संप्रेषण का कलात्मक प्रकार है। जिसके अन्तर्गत- तालबद्ध, लयबद्ध संगीतबद्ध होकर मुख पर विभिन्न भाव-भंगिमाओं, हस्त-मुद्राओं हस्त-संचालन, पद-संचालन, कटि-संचालन (कमर) ग्रीवा (गर्दन) संचालन के द्वारा रस का संचार किया जाता है।

नृत्य आत्माभिव्यक्ति का सुन्दर माध्यम है। नृत्य सृजनात्मकता का संवाहक होता है। इसके द्वारा बालकों-बालिकाओं के सौन्दर्य के प्रति संवेदनशील बनाया जा सकता है।इसके द्वारा अपने शरीर के प्रति पूर्ण जागरुकता लाई जा सकती है। इसके द्वारा मानसिक चैतन्यता में सुधार किया जा सकता है यह एकाग्रता में सहायक है। इसके द्वारा शारीरिक चपलता में वृद्धि की जा सकती है। यह तनाव मुक्ति का माध्यम है।

इसके द्वारा अपने देश की संस्कृति, साहित्य, दर्शन का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।इसके माध्यम से अपने देश की लोक-संस्कृति, परिधान से परिचित हो सकते हैं।

नृत्य के द्वारा शारीरिक मानव क्रियाशीलता, हाथ-पैर, आँख आदि के बीच समन्वय स्थापित किया जा सकता है।

इसके माध्यम से लय, ताल का ज्ञान कराया जा सकता है। बालक-बालिकाओं को शास्त्रीय एवं लोक नृत्यों का ज्ञान कराया जा सकता है।

महान नृत्य साधकों के कार्यक्रमों द्वारा बालक-बालिकाओं में श्रेष्ठ नृत्य की प्रशंसा का भाव जागृत किया जा सकता है।मानव के विभिन्न भावों को रसों के माध्यम से अभिव्यक्ति किया जा सकता है।

1.4.2 नृत्य का महत्व

नृत्य उल्लास का प्रतीक है। यह मानव में आनन्द का संचार करता है। यह बच्चों को शारीरिक रुप से सक्षम बनाता है। यह आत्मविश्वास में वृद्धि करता है। नृत्य की शिक्षा ग्रहण करते समय बालक-बालिकाऐं नृत्य सीखने के दौरान परिश्रम करना सीखेंगे तथा उनमें अनुशासन का भाव जागृत होगा।

नृत्य द्वारा शरीर लचीला, सुगठित एवं मस्तिष्क स्वस्थ रहता है। नृत्य सृजनात्मक एवं कल्पनाशक्ति का विकास करता है। जब बच्चे विभिन्न मुद्राओं द्वारा प्रस्तुति करेंगे तो उनमें अनुशासित रहकर कार्य करने की प्रवृत्ति का विकास होगा। बच्चों को नृत्य के माध्यम से संस्कारों से परिचित कराया जा सकता है। यह प्रसन्नतापूर्वक कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करता है। सह शैक्षिक अभिक्रियाओं से तात्पर्य उन अभिक्रियाओं से हैं जिन्हें विद्यार्थी अपने पाठ्य विषयों के साथ-साथ मन के पोषण तथा रंजन के लिये करते हैं। इसके अन्तर्गत विद्यार्थी अपने भाव-पक्ष तथा तर्क खण्ड को सृजनात्मकता से जोड़कर स्वस्थ मनोरंजन के साथ ज्ञान-लाभ भी करते हैं। यह गतिविधियाँ विद्यार्थी को अधिक विचारशील, सकरात्मक, सृजनशील एवं चतुर बनातीं हैं।

1.5रचनात्मकएवंसृजनात्मकपाठ्यसहगामीगतिविधियोंकाउद्देश्यवमहत्व

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बच्चे का सर्वांगीण विकास से तात्पर्य बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक एवं नैतिक विकास करने से है।शिक्षा के द्वारा बच्चे का सर्वांगीण विकास सम्भव है। शिक्षा का उद्देश्य बालक-बालिका को सामाजिक तथा सांस्कृतिक रुप से विकसित करना है। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु पाठ्य-पुस्तकों तथा पाठ्य-सहगामी, रचनात्मक गतिविधियों के मध्य सन्तुलन आवश्यक है।पाठ्यक्रम के साथ-साथ चलने वाली गतिविधियों को पाठ्यसहगामीक्रियाएँ कहते हैं।

यह विद्यार्थियों को अपने कौशलों, एवं रचनात्मक क्षमता को प्रदर्शित करने का अवसर प्रदान करती है। इन गतिविधियों के अन्तर्गत कला, संगीतनाटक, नृत्य आदि रचनात्मक गतिविधियाँ सम्मिलित हैं।

पाठ्यसहगामी क्रियाओं के अन्तर्गत साहित्यिक गतिविधियाँ जैसे भाषण, प्रश्नोत्तोरी, वाद-विवाद, निबन्ध लेखन भी समाविष्ट है। कालाऐं रचनात्मक से परिपूर्ण होती हैं। यह बच्चों की

कल्पनाओं को यथार्थ का धरातल प्रदान करतीं हैं। बच्चे इन गतिविधियों में भाग लेकर अपने मन की कल्पनाओं को कला के माध्यम से प्रस्तुत कर सकते हैं।

ऐस गतिविधियाँ जो विद्यालय अथवा महाविद्यालय द्वारा आयोजित की जात हैं तथा पाठ्यक्रम का अभिन्न हिस्सा होत हैं तथा शैक्षिक संस्थान का महत्वपूर्ण भाग होत हैं।

पाठ्य-सहगाम क्रिया का क्रियान्वयन कक्षा के अध्ययन को समृद्ध व सशक्त बनाता है। यह बच्चों के व्यक्तित्व विकास में सहायक हैं। यह बालक-बालिकाओं की भाषण, गायन, कविता-पाठ, नाट्य नृत्य करने की प्रतिभा को धरातल प्रदान कर उन्हें निखारने का कार्य करता है।

बच्चों के व्यक्तित्व-विकास हेतु किस भ विद्यालय के पाठ्यक्रम में पाठ्य-सहगाम गतिविधियों का सम्मिलन किया जाना चाहिये। यह गतिविधियाँ व्यवहारिक रुप से बालक-बालिकाओं में वाद विवाद, भाषण विभिन्न ज्वलंत विषयों पर विचार-विमर्श के माध्यम से स्वतंत्र विचार व चिन्तन की ओर अग्रसर करतीं है। यह गतिविधियाँ तर्कशक्ति नेतृत्व क्षमता का भ विकास करतीं है। यह गतिवधियाँ न केवल बच्चों को क्रियाशल व उर्जावान बनातीं हैं अपितु उनकी आन्तरिक क्षमताओं को उजागर करतीं है। इनके माध्यम से बच्चे में सहयोग, व समन्वय की भावना का विकास किया जा सकता है। इनके माध्यम से बच्चे को उसकी क्षमताओं के प्रदर्शन के अवसर देकर उसका मनोवैज्ञानिक स्तर पर विकास कर समान को सुगठित किया जा सकता है।बच्चों की उर्जा का उपयोग सह दिशा में किया जा सकता है।

जव के उद्देश्यों व लक्ष्यों की पूर्ति हेतु ये गतिविधियाँ महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करत हैं। बालक-बालिकाऐं विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हिस्सा लेकर अपन पहचान बना पाऐंगे। स्वतः का मूल्यांकन तथा समाज वरण कर सकेंगे। नृत्य, गतों द्वारा विभिन्न स्थानों की संस्कृति भाषा वेशभूषा से परिचित हो सकेंगे।

आपस सामंजस्य, कजुटता, समरसता, समायोजन क दूसरे के साथ समूह में कार्य करने की भावना का विकास किया जा सकता है। जैसा आप जानते ह होंगे कि प्रत्येक बालक-बालिका अपने आप में विशिष्ट होता/होत है। प्रत्येक बच्चे में अपन कुछ समस्यों व गुण होते हैं। बच्चे अस ऊर्जा से भरे रहते हैं। रचनात्मक व पाठ्य सहगाम गतिविधियाँ उनकी ऊर्जा व क्षमताओं को उचित दिशा प्रदान करतीं है जिससे उनके भावों को अभिव्यक्ति का माध्यम मिलता है। इन गतिविधियों के माध्यम से बच्चे के व्यक्तित्व में सन्तुलन लाया जा सकता है।

नाटकों में अभिनय के माध्यम से बच्चा अच्छे-बुरे व्यक्तित्व से परिचित होकर, सह-गलत में भेद कर सकेगा तथा स्वयं का मूल्यांकन कर सकेगा तथा क स्वस्थ समाज का निर्माण कर जिम्मेदार नागरिक बन सकता है।

आप समझ ह गा होंगे कि यह गतिविधियाँ हमारे जव में कितन महत्वपूर्ण हैं। यह गतिवधियाँ किस भ शैक्षिक पाठ्यक्रम को सशक्त आधार प्रदान करतीं हैं। इनके माध्यम से बच्चे

अपने विचारों एवं कौशलों को निखार सकते हैं। इनके माध्यम से किशोरवय के बालक-बालिकाओं की उर्जा को उचित दिशा में उपयोग हेतु प्रोत्साहित किया जा सकता है तथा नकारात्मक व व्यर्थ के कार्यों पर नियंत्रण किया जा सकता है।

विभिन्न विषयों के अध्ययन करते समय विद्यार्थी कक्षा में एकरसता का अनुभव करते हैं। पाठ्य सहगामी क्रियाएँ कक्षा को सरस, □नन्ददायक बनाने में सहायक हैं।

□पके मन में कुछ प्रश्न होंगे जैसे कि किस प्रकार पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ, शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगी एवं सहायक हैं? पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ बालक-बालिकाओं के समग्र विकास में सहायक हैं। बच्चों को मूल्यों की शिक्षा देने में सहायक हैं।

विभिन्न □न्तरिक भावों को अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानसिक सुस्वास्थ्य के लिये बहुत □वश्यक है। यह गतिविधियाँ बच्चों को जीवन में अनुशासन का महत्व बताती है। अनुशासन के अभाव में हम किसी भी रचनात्मक गतिविधि को सम्पन्न नहीं कर सकते।यह बच्चों में विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करतीं हैं।स्वस्थ्य प्रतियोगिता हेतु बच्चों को प्रेरित करतीं हैं। यह गतिविधियाँ दूसरों के विचारों एवं भावनाओं का □दर करना सिखातीं हैं।

यह गतिविधियों बच्चों को विभिन्न कार्यक्रमों को □योजन करने उसमें भाग लेने, एक दूसरे का सहयोग विभिन्न परिस्थितियों में करने हेतु प्रेरित करतीं हैं। यह बच्चें में निर्णय लेने की क्षमता को विकसित करतीं हैं। सह-शैक्षिक क्रियाएँ- इनके अन्तर्गत सांगीतिक गतिवधियों, नाटक, दृश्य-कला सम्बन्धी गतिविधियाँ, साहित्यिक गतिविधियाँ, नृत्य, खेल, प्रदर्शनी इत्यादि समाहित हैं।

सांगीतिक गतिविधियाँ **(**शास्त्रीय उप-शास्त्रीय**,** सुगम-संगीत**,** लोक-संगीत**)**

(क) एकल गायन

(ख) समूह गायन

रंगमंचीय गतिविधियाँ

i. एकांकी
ii. लघु हास्य नाटिका
iii. मिमिक्री (नकल)
iv. मूक अभिनय
v. नुक्कड़ नाटक

दृश्य कला सम्बन्धी गतिविधियाँ

i. रेखा-चित्रण
ii. दृश्य-चित्रण

iii. कोकाण
iv. पोस्टर बनाना
v. आनदस्पाटपेंटिग
vi. फोटोग्राफी
vii. मृण-कला
viii. मूर्ति कला

साहित्यिक गतिविधियाँ

i. वाद-विवाद
ii. आशु-भाषण
iii. निबन्ध लखिम
iv. प्रश्नोत्तरी
v. टर्न कोट
vi. कविता पाठ (स्वरचित)

नृत्य सम्बन्धी गतिविधियाँ(शास्त्रीय नृत्य**,** लोक-नृत्य**)**

i. एक नृत्य
ii. युगल नृत्य
iii. समूह नृत्य

उपर्युक्त सह-शौक्षिक एवं क्रियात्मक गतिवधियों को संगीत, रंगमंच, दृश्यकला, साहित्य एवं नृत्य तक परिसीमित किया गया है।

अतः हम यह कह सकत हैं कि उपर्युक्त गतिविधियों में भाग लम बच्च क अन्दर आत्मविश्वास तथा विभिन्न कलाओं को सीखन तथा दक्षतापूर्वक प्रदर्शित करन का अवसर प्राप्त होता है।

1.6 सन्दर्भग्रन्थसूची

1. परांजपधीधरशरतचंद्र, 2004, संगीत-बोध,पंचमआवृत्ति, मध्यप्रदशहिंदीग्रन्थअकादमी, भोपाल .
2. Gawri Kuppuswarmy & M. Hariharan, 1980, 'Teaching of Music', Sterling Publications Pvt. Ltd., New Delhi.
3. Connors Abigail, 2004, Early Childhood Music Specialist- '101-Rhythm Instrument, Activities of Young Children', Grayphone House.
4. Dogulas, H. R. & Mills, H. H., 1948, "Teaching in High-School', The Ronald Press, New-York.

5. Giles, M. M. Cogan, D. & COX, 1991, 'A Music and Art Program to Promote Emotion Health in Elementary School Children', Journal of Music Remedy, 28:135-148.
6. Bagley, W.C., 1918, "The Education Process", Macmillan Co, New-York.
7. Harry C. McKown, 1938, Activities in the Elementary School, Mc Graw Hill, N. Y.
8. MC Kown, H. C., 1952 'Extracurricular Activities' (Third Edition), New York, Macmillan Co.
9. Mahender Reddy Sarsani, 2005, First Edition, Published by Sarup & Son, Ansari Road Dariyaganj, New Delhi.
10. Kapila Vatsyayan, 1996, Bharat Natya Sastra, Sahitya Academy, New Delhi.
11. www.sacsa.sa.edu.au
12. Rena Upitis, 2011, ' Arts education for the development of the whole child.', Elementary Teachers Federation of Ontarlo, Toronto.
13. Onkar Prasad, 2010 'Folk Music & Folk Dances of Banaras', Anthropological Survey of India.
14. K. P. Bahadur, 1978, 'One Hundred Rural Songs of India', Motilal Banarasidass Indological Publishers & Booksellers, New Delhi.
15. Arnold Rose, 1952, "The Singer & Voice, Faber and Faber"

1.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संगीतकेअर्थएवंउद्देश्यकोस्पष्टकरें। विद्यालयीपाठ्यक्रममेंसंगीतशिक्षाकेमहत्वकोसमझाएँ।
2. रचनात्मकएवंसृजनात्मक पाठ्यसहगामी प्रमुख गतिविधियों का वर्णन करें।

इकाई 2- भारतीयसंगीत - प्रकारशैलियाँएतिहासिकएवंसमकालीनपरिप्रेक्ष्यकेसन्दर्भमें

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 उत्तरभारतीयतथादाक्षिणात्यसंगीत
2.4 स्वरप्रशिक्षण, कर्णप्रशिक्षणतथागायनहेतुसटीकमुद्रा
2.4.1 स्वरप्रशिक्षण
2.4.2 कर्णप्रशिक्षण
2.4.3 गायनहेतुसटीकमुद्रा
2.5 एकलगायन (हिन्दुस्तानी)
2.6 समूहगायन
2.7 सन्दर्भग्रन्थसूची
2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

किसीभीसंस्कृतिकीआत्माउसकेसंगीतमेंबसतीहै।इसीप्रकारभारतीयसंस्कृतिकीझलकहमेंयहाँ येसंगीतमेंदिखाईपड़तीहै।भारतवर्षमेंविकसिततथाप्रचलितसंगीतभारतीयसंगीतकहलाया।संगीतगायन, वादनऔरनृत्यकासमुच्चयहै।वैदिकयुगमेंसामतथागान्धर्वपरम्पराओंकाउल्लेखमिलताहै। 'साम' वैदिकमहर्षियोंकासंगीतथागान्धर्वसंगीतव्यवसायीगंधर्वोंद्वारागायाजानेवालासंगीतथा।संगीतकेलियेप्रा चीनग्रन्थोंमेंगान्धर्वशब्दकाप्रयोगहुआहै।गान्धर्वप्राचीनकालकेगायकलोगथे।इनकेगायनकेसाथवाद्योंकी संगतिथी।गान्धर्ववहहैजिसकाप्रयोगगन्धर्वजैसेप्राचीनगायककरतेथे (परांजपेशरच्चन्द्रसंगीत-बोधपृ0 सं0 3-4)

भारतीयसंगीतप्रारम्भसेदोरुपोंमेंप्रवाहमानहोतारहा -

(1) मार्गसंगीत (2) देशीसंगीत

i. **मार्गसंगीत** - एकवहजोधार्मिकसमारोहोंपरविधि-विधानमेंउपयोगकियाजातारहा।
ii. **देशीसंगीत** - वहजोलौकिकसमाराहोंमेंउपयोगकियाजातारहा, जिसकाउद्देश्यजनताकामनोरंजनकरनाथा।यद्यपिसंगीतकाआरम्भिककालवेदोंसेभीपूर्वकाहै।पर न्तुलिखितप्रमाणकेअभावमेंनिश्चितरुपसेकुछकरनाकठिनहोजाताहै।वेदोंमेंसंगीतकेदर्शनहोतेहैंवै

दिककालमेंसंगीतकेदोरुपप्रवाहमानथे (1)
प्रथमप्रकारकासंगीतजोधार्मिकअनुष्ठानोंपरउपयोगमेंलायागयामार्ग-संगीतकहलायातथा (2)
जोसंगीतलौकिकसमारोहोंकीशोभाबनावह 'देशी' संगीतकहलाया।

- मार्ग-संगीतनियमबद्ध, गम्भीरप्रकृतिवाला, संयततथापरिष्कृतथावहींदेशी-संगीत, लोकरुचिपरआधारित, स्वर-वैचित्र्यसेयुक्तचपलतालियेहुएथा।
- ठुमरी, दादरा, गीत, ग़ज़लआदिदेशीसंगीतहै।
- मार्गसंगीत, संगीतसंस्कारयुक्तऔरपरिष्कृतहोनेकेकारणशास्त्रीयसंगीतकीश्रेणीमेंस्थितरहा, वहींजन-
  रुचिएवंलोकप्रसिद्धहोनेकेकारणदेशीसंगीतसर्वसामान्यजनोंकेमध्यलौकिकसंगीतकीश्रेणीमें स्थितरहा।
- शास्त्रीयपरिष्कारसेसम्पन्ननियमबद्ध, व्याकरणबद्धहोताहै।
- लौकिकसंगीत,
  शास्त्रीयसंगीतकीअपेक्षाअधिकनियमोंकीपरिधिसेस्वतन्त्ररहा।फिरभीशास्त्रीयसंगीतएवंलौकिकसंगीतमेंपरस्परआदान-प्रदानचलतारहातथाइससौन्दर्यकेआदान-
  प्रदाननेदोनोंप्रकारकेसंगीतकोसमृद्धकिया।
- शास्त्रीयसंगीतकोजनप्रियबनरहनेकेलियेनवीनयुगकीमाँगकेअनुरुपनवीनतकनीक, तत्वोंएवंशैलियोंकोस्वीकारकरनाहोगाजिससेइसमेंसौन्दर्यएवंनिरन्तरताबनीरहेगी।
- भारतीयसंगीतकाइतिहासइन्हींमुख्यदोप्रवाहोंकेपरस्परआदानप्रदानकीविस्तृतकहानीरहाहै।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1. भारतीयसंगीतकेप्रमुखप्रकारोंकोस्पष्टकरसकेंगें।
2. उत्तरभारतीयतथादाक्षिण्य संगीत संगीत की व्याख्या कर सकेंगें।
3. स्वरप्रशिक्षण, कर्णप्रशिक्षणतथागायनहेतुसटीकमुद्राओंकावर्णनकरसकेंगें।
4. गायनकीप्रमुखशैलियोंकीव्याख्याकरसकेंगें।

2.3उत्तरभारतीयतथादाक्षिणात्यसंगीत

- भारतमेंमुख्यरुपसेसंगीतकीदोधाराऐंप्रवाहितहोतीरहीं।
- एकहीउद्गमहोनेपरभीशैलीगतभिन्नताकेकारणदोनोंमेंविभिन्नतादेखीजासकतीहै।संगीतकायहमतंगके 'वृहद्देशी' नामकग्रन्थमेंउत्तरतथादक्षिणकीप्रादेशिकशैलियोंकास्पष्टउल्लेखहै।संस्कृतकेस्थानपरप्रादेशिकभाषाओंकोलेकरसंगीतदेशकेविभिन्नभागोंमेंविकसितहोतारहाऔरभारतीयसंगीतकीमूलधारा

कोसमृद्धबनातारहा।ई0 7 सदीसेई0 13 तककाकालसंगीतकेलियसंक्रमणकाकालरहा।इसीकालखण्डमेंभारतीयसंगीतकाविदेशीसंगीत केसाथसम्पर्कहुआ।

- भारतकाईरानीराग, वाद्यतथाशास्त्रसेपरिचयइसीसमयहुआभारतीयसंगीतकाउत्तरहिन्दुस्तानीतथाकर्नाटकीइनदोस म्प्रदायोंमेंविभाजनकासूत्रपातइसीयुगकीमहत्वपूर्णघटनाहै।(परांजपे, शरच्चन्द्र, संगीतबोध . पृ. 5-6)
- उत्तरभारतीयसंगीतशैलीमेंध्रुवपद, धमार, ख्याल, टप्पा, सादरा, ठुमरीऔरतरानाआदिकासमावेशहै।दक्षिणभारतीयअथवाकर्नाटकीसंगीतमेंकीर्तनम्, कृति, जावली, तिल्लानाआदिसमाविष्टहैं।भारतीयसंगीतमेंगायनशैलियोंकेविभिन्नप्रकारसमय-समयपरप्रचलितहैंजिन्हेंप्रबन्धकहागया।संगीतकेशास्त्रकारपण्डितशारंगदेवनेअपनेपूर्वकि 75 प्रबन्धोंऔरउनकेभेदोंकाविवरणदियाहै।पण्डितशारंगदेवकेउपरान्तभारतीयसंगीतमेंध्रुवपद, धमार, ख्यालआदिप्रबन्धोंकाआगमनहुआ।

i. **ध्रुवपद-**

उत्तरभारतीयसंगीतकीगायनशैलीकायहप्रकारमध्ययुगसेवर्तमानसमयतकनिरन्तरप्रचलितहै।यह एकगम्भीरगायनशैलीहै।पूर्वमेंध्रुवपदकीभाषासंस्कृतरहीजोकालान्तरमेंहिन्दीहोगई।वर्तमानमेंध्रुवपदकेचारभागपाएजातेहैं - (1) स्थायी (2) अन्तरा (3) संचारी (4) आभोग

ii. अनकेध्रुवपदोंमेंस्थायीऔरअन्तरायेदोभागहोतेहैं।ध्रुवपदकोध्रुपदभीकहतेहैं।ध्रुपदगीतोंमेंकरुण, श्रृंगार,

वीरवात्सल्यआदिसभीरसोंकीअभिव्यक्तिकीजातीरही।ध्रुवपदकेसाथनिम्नतालोंकाप्रयोगकिया जाताहै - चैताल, सूलताल, ब्रह्मताल, रुद्रताल, आड़ाचारताललक्ष्मीतालआदि।ध्रुवपदकेसाथपखावजअथवामृदंगकीसंगतिकीजातीहै।

iii. **धमार** - धमारगायनकाप्रकारहैजो 14 मात्राकेधमारतालमेंगायाजाताहैइसकेगीतोंमेंराधा-कृष्ण, अबीर- गुलाल, पिचकारीसम्बन्धीगीतहोतेहैं।इसकेगीतोंकेदोभागहोतेहैं (1) स्थायी (2) अन्तरा

इसकेगीतश्रृंगाररासप्रधानहोतेहैं।धमारगीतोंकेसाथमृदंग, पखावजकीसंगतिकीजातीहै।

iv. **ख्याल-**ख्यालअरबीभाषाकाशब्दहैजिसकाअर्थहै-

विचारअथवाकल्पना।वर्तमानमेंशास्त्रीयसंगीतकीयहलोकप्रियशैलीहै।इसकेगीतकेदोभागहोतेहैं - (1) स्थायी (2) अन्तरा

इसकेगीतोंमेंभक्तिश्रृंगार,

वीरताप्रकृतिसम्बन्धीगीतहोतेहैं।इनगीतोंकेसाथतबलेकीसंगतिहोतीहै।यहएकतालझपताल, रूपक, त्रितालआदिमेंगायाजाताहै।

v. **ठुमरी** - यहभावप्रधानगायनशैलीहै।इसकीगणनाउप-शास्त्रीयसंगीतकेअन्तर्गतकीजातीहै।यहश्रृंगाररसप्रधानगायनशैलीहै।इसकेगीतराधा-कृष्ण, नायक-

नायिकाकेप्रेमपरआधारितहोतेहैं।पूर्वमेंठुमरीगायनकरतेहुएगायिकाऐंगीतकेशब्दोंकेअनुरुपहाव-भाव, हस्तसंचालनभीकियाकरतींथीं।यहदीपचन्दी, जततालमेंगायीजातीहै।ठुमरीकेदोअंगहै - **(1) पूरबअंग (2) पंजाबअंग।**

- **पूरबअंग-**पूरबअंगबनारसतथालखनऊमेंप्रचलितहै।बोल-बनावइसकीविशेषताहै।
- **पंजाबअंग-**यहपंजाबक्षेत्रमेंमूलतःप्रचलितरहा।

vi. **टप्पा-**

यहगीतशैलीपंजाबकेप्रदेशोंमेंजन्मीजिसकेगीतपंजाबीभाषामेंहोतेहैं।यहअद्धातालयापंजाबीत्रितालमेंगायाजाताहै।

vii. **ग़ज़ल-**गज़लफारसीभाषाकाशब्दहै, जिसकाअर्थहै - आशिक-माशूककापरस्परवार्तालाप। इसकेदोचरणहोतेहैं - **(1) स्थाई (2) अन्तरा**

अन्तराकीसंख्यातीनअथवाइससेअधिकभीहोसकतीहै।ग़जलकेसाथतबलेकीसंगतिहोतीहैतथा इसेदादरा, कहरवा, रूपकआदितालोंमेंगायाजाताहै।

viii. **भजन-**ईश्वरकीआराधनामेंसंतों, रचनाकारोंकेपदभजनकहलाए।इसकेदोभागहोतेहैं–

(1) **मुखड़ा**(2) **अन्तरा**

यहदादरा, कहरवाआदितालोंमेंगायाजाताहैहै।इकसेसाथतबला, पखावज, मृदंगइत्यादिकीसंगतिहोतीहै।

इसगायनशैलियोंकेअतिरिक्तदादरा, चैती, होरी, कजरी, बारहमासा, चैमासा, आदिशैलियाँभीवर्तमानसमयमेंप्रचलितहैं।

दक्षिणाव्यसंगीतकेअन्तर्गतपदम्, कीर्तनम्, कृति, वर्णम्, जावलि, तिल्लाना, तालमालिकाआदिप्रचलितहैं।

2.4स्वरप्रशिक्षण, कर्णप्रशिक्षणतथागायनहेतुसटीकमुद्रा

संगीतसर्वदाभावभिव्यक्तिकाएकसहजमाध्यमरहाहैभारढोनेसम्बन्धीपरिश्रमसेध्यानहटानेहेतु आदिमानवकातालयुक्तध्वनियोंकाप्रयोगकिया।सैनिकोंमेंएकजुटताकासन्देशतथाधर्मगुरुओंद्वारापूजास्थलोंमेंप्रेरकभजनोंकेमाध्यमसेशान्तिकासन्देशदेनेमेंभीसंगीतएकमहत्वपूर्णउपकरणरहा।

संगीतमेंनीहितइसीसर्वव्यापकताकेगुणकोसमाजमेंस्थापितकरविशेषकरविद्यालयोंमेंविद्यार्थियों द्वाराआत्मसातकरनेकेउद्देश्यसेउनकोस्वर-प्रशिक्षण, कर्ण-प्रशिक्षण, अभ्यासकरतेसमयबैठनेकीसटीकमुद्रासम्बन्धीनिर्देशदेनामहत्वपूर्णहै।

2.4.1 स्वरप्रशिक्षण

- संगीतकीकक्षामेंशिक्षककोकमजोरविद्यार्थियोंको (जोसटीकस्वरोच्चारणनकरपातेहों) कोपहलीपंक्तिमेंबैठानाचाहिये,

जिससेवेशिक्षककेसटीकस्वरकोसुनसकेायेविद्यार्थीनिकटसेशिक्षककागायनसुनकरअनुकरणकरनेयो

ग्यहोपायेंगे।प्रथमतःप्रत्येकस्वरपरठहरकरयदिअभ्यासकरायाजायतोविद्यार्थियोंकोस्वरोंकोसीखनेमें सुगमताहोगी।सामान्यतयाजिनविद्यर्थियोंमेंएकाग्रताकीकमीहोतीहैवेस्वरोंकीआवृत्तियोंकोग्रहणनहीं करपाते।अतःप्रत्येकविद्यार्थीपरविशेषध्यानदियाजानाचाहिये।स्वराभ्यासकेपश्चातअलंकारोंकाअभ्या सकरायाजानाचाहिये।

- स्वरप्रशिक्षणसंगीतशिक्षाकामहत्वपूर्णपक्षहै।एकाग्रतापूर्वकतथाध्यानपूर्वककरायागयास्वराभ्यासआ वाज़कोमधुरएवंस्पष्टबनानेमेंसहायकहै।
- श्वासपरनियंत्रणस्वराभ्यासकामहत्वपूर्णभागहैतथायहकेवलअभ्यासद्वाराहोसकताहै।इसकेपश्चातवि भिन्नअलंकारोंकाप्रशिक्षणदियाजाताहै।इनसभीअलंकारोंकोरुचिकरतथासुन्दरबनायाजाताहैजिससे विद्यार्थियोंकीरुचिइनमेबनीरहे।कभीभीस्वरयंत्रपरअनावश्यकबलनहींदियाजानाचाहियेअन्यथाबाल कोंकेस्वर-यंत्रपरहानिकारकप्रभावहोसकताहै।
- बाल्यकालमेंसामान्यतःबच्चाएकसप्तककेभीतररहकरगायनगायनकरताहैजिसेक्रमशःसमयकेसाथश नैःशनैःदूसरेसप्तकतकगलेकेगुणधर्मकेअनुसारबढ़ायाजासकताहै।विभिन्नस्वरस्थानतथास्वरोंकीतार ताकाअभ्यासकरायाजानाचाहिये - यथाहारमोनियमकेविभिन्नस्वर-स्थानोंकामंद्रसप्तकसासेतारसप्तककेषड्जतककाअभ्यासकराना।
- स्वरोच्चारणहेतुश्वासपरनियंत्रणकेसाथस्वर-यंत्र, जिह्वाकोतनावरहितरखकरसीनाबाहरकीओरनिकलाहोनाचाहिये, मेरूदण्डसीधाहोनाचाहिये, मुखतथागलेपरकिसीप्रकारकाअतिरिक्ततनावनहींहोनाचाहियेतथानाभिस्थानपरकिंचिद्बलदेकरसहज तासेस्वराभ्यासकियाजानाचाहिये।
- स्वरोच्चारणमेंहमारेफेफड़ों, स्वर-यंत्रकीसहायतासेध्वनिहमारीनासिकाकीसहायतासेद्विगुणितहोकर, मुखमेंजिह्वादन्तावलीतथाहोंठकीसहायतासेस्पष्टहोतीहै।सुन्दरगायनकरनेहेतुपूर्णश्वासभरनाबहुतहीआ वश्यकहै।श्वासकोभीतररोकतेहुएधीरे-धीरेस्वरोच्चारणकियाजानाचाहियेअन्यथाछोटीश्वासभरनेपरस्वरोंपरटिकावतथाउनकाअलंकरणस म्भवनहींहोगा।

2.4.2 कर्णप्रशिक्षण

कानोंकाकार्यसंगीतशिक्षामेंअत्यन्तमहत्वपूर्णहै।उचितकर्णप्रशिक्षणकेअभावमेंसहीस्वरतथाग लतस्वरकीपहचाननहींहोपाएगी।किसीभीसांगीतिककार्यक्रममेंश्रोतातथाप्रस्तोताकाकानहीसर्वोच्चनि र्णायकसत्ताहोतीहै।अतःकानोंकापक्काहोनाबहुतहीआवश्यकहै।संगीतकीभाषामेंकहावतहै- भलेहीतानसेननबनोपरन्तुकानसेनअवश्यहोनाचाहिये।
कर्णप्रशिक्षणहेतुविद्यार्थीकोविभिन्नस्वर-स्थानोंसेगाए-बजाएगीतसुनकरतकअभ्यासकराएजानेचाहियेजिसकेद्वाराविद्यार्थीविभिन्नस्वर-स्थानों, तथागीतमेंप्रयुक्तविभिन्नरागों, तालोंलयोंकोस्पष्टतयापहचानसकें।

2.4.3 गायनहेतुसटीकमुद्रा

गायनकीप्रस्तुतिअथवाअभ्यासकरतेसमयबैठनेकीसटीकमुद्राअत्यन्तमहत्वपूर्णहै।विद्यार्थियों कोगायनकरतेसमयअपनामेरूदण्डसीधारखनाचाहिये,
सिरतथासीनाआगेकीतरफनिकलाहुआहोनाचाहिये।शरीरकाकोईभीअंगतनावकीअवस्थामेंनहींहोनाचा हियेतथाअत्यन्तसहजताएवंप्रसन्नतापूर्वकगायनकियाजानाचाहिये।

2.5एकलगायन (हिन्दुस्तानी)

भारतमेंगायाजानेवालासंगीतभारतीयसंगीतहै।पश्चिमीदेशोंमेंगायाजानेवालासंगीतपश्चिमीसंगीत कहलाताहै।भारतीयसंगीतकामूलवैदिकऋचाओंएवंमंत्रोंमेंदिखाईदेताहै।वेदोंमेंसंगीतकेदर्शनहोतेहैं।साम वेदसंगीतमयहै।यूँतोमानवनेसंगीतप्रकृतिसेसीखा।झरनोंकीकल-कलध्वनि, मन्द- मलयसमीर, चिड़ियोंचहचहाट, कोयलकीकूकविभिन्नपशुओंकीबोलियोंआदिसेमानवनेसंगीतसीखा।

आपजानतेहोंगेहमारेदेशमेंमुख्यतःसंगीतकीचारधाराऐंहैं।

(1) शास्त्रीयसंगीत (2) उपशास्त्रीयसंगीत (3) सुगमसंगीत (4) लोकसंगीत

शास्त्रीयसंगीतकेदोभागहैं - **(1) हिन्दुस्तानीसंगीत (2) कर्नाटकसंगीत**

- **हिन्दुस्तानीशास्त्रीयसंगीत**केअंतर्गतध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पाआदिगाएजातेहैं
- **उप-शास्त्रीयसंगीत**केअन्तर्गत-, ठुमरी, दादरा, होली, चैती, कजरीआदिगाएजातेहैं।
- **सुगमसंगीत**केअन्तर्गतभजन, गीत, गज़लआदिसमाविष्टहै।

भारतीयएकलगायनकेअन्तर्गतसंगीतकेउपर्युक्तमेंसेकोईभीप्रकारआसकतेहैं।

- **लोकसंगीत**केअन्तर्गतप्रत्येकप्रदेशमेंलोकगीतसमाविष्टहैं।
- **''एकल''**शब्दकाअर्थहैएकव्यक्तिद्वाराजिसगीतकाएकव्यक्तिद्वारागायनकियाजायउसेएकलगायन कहतेहैं।आपनेयमन, भैरव, भूपालीआदिरागोंकेनामसुनेहोंगे।
- हिन्दुस्तानीशास्त्रीयसंगीतरागोंपरआधारितहै।वहींउप-शास्त्रीयसंगीतमेंकुछरागविशेषजैसे- पीलू, खामाज, भैरवीकाफी, पहाड़ीजोगियाआदिपरआधारितगीतगाएजातेहैं।
- लोकसंगीतकेअन्तर्गतविभिन्नप्रान्तोंमेंगाएजानेवालेलोकगीतजैसेउत्तरप्रदेशकासोहर, आल्हा, पचरा, रसिया, विरहा, चैता, चैती, कजरी, होलीआदिसमाविष्टहैं।
- राजस्थानकालंगा, पंखीड़ालोटिया, मंगनियारलोकगीत, गणगौरगीत, तीजगीतपनिहारीगीत।

- गुजरातकागरबा, महाराष्ट्रकालावनी, पोवाड़ा, आसामकाबीहूगीत, उड़ीसाकादासकाठियालोकगीतकरलाकाभूतागीतआदि।छत्तीसगढ़कापण्डवानीलोकगीत।कुमाऊँ काबारहमासा।कश्मीरकाछकरी।यसभीलोक-गीतक्षत्रविशेषमेंप्राप्तलोकवाद्योंजैस- मंजीरा, झाँझ, कमाइचा, लक, खड़ताल, ोलमादल, रबाब, सारंगी, तुंबकनारीआदिवाद्योंकसाथगाएजातहै।
- सुगमसंगीतकअन्तर्गतविभिन्नकवियोंद्वारारचितगीत, शायरों, ग़जलकारोंकीगज़लें, तथामहानसंतोंद्वारारचितभजनोंकोस्वरबद्धकरकदादरा (छःमात्राकीताल) कहरवा (आठमात्राकीताल) मेंगायाजाताहै।
- भारतीयसंगीतरागोंपरआधारितमलॉडीसंगीतहैतथापाश्चात्यसंगीतहारमनीसंगीतहै।
- **मेलॉडीसंगीत-**
  मलॉडीमेंगायनकअन्तर्गतकिसीविशषस्वरसमूहकोलकरस्वरोंकाक्रमिकविकासकियाजाताहैकिस भीस्वरआधारस्वरसासजुड़ाजातहै।
- **हारमनीसंगीत-**हारमनीमेंआधारस्वरस्थिरनहींरहता, वरनसमय-समयपरबदलतारहताहै।

2.6समूहगायन

समूहमेंसाथ-

साथगायनकरनासमूहगायनकहलाताहै।साथमेंमिलकरगानसमुदायकीभावनाकानिर्माणहोताहै।समूहमें आशाकासंचारहोताहैएवंकठिनपरिस्थितियोंमेंसन्तुलनबनाएरखतहुएअपनकउसकअनुरुप लनकौ शलसीखाजासकताहै।

समूहमेंगायनकीपरम्पराबहुतहीप्राचीनहै।अनन्तकालसमानवअपनहर्षकाउद्गारसामूहिकरुपसएकत्रितहो करस्वरतथानृत्यकमाध्यमसकरतारहाहै।

- समूहमेंगायनकरनेसेआपसीसद्भावएवंसामंजस्यकीभावनाविकसितहोतीहै।
- व्यक्तिसहभागीकेरुपमेंअपनीसहभागिताकरगायनकार्यमेंयोगदानकरताहै।
- समूहगायनकरनेसेस्वानुशासनकीभावनाजागृतहोतीहै।
- समूहगायनकेसाथसिन्थेसाइज़रगिटार, ड्रम, आक्टोपैडआदिकीसंगतहोतीहै।

2.7सन्दर्भग्रन्थसूची

1. परांजपे, श्रीधर शरदचन्द्र (2004). संगीत बोध, पंचम आवृत्ति, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
2. Gawri Kuppuswarmy & M. Hariharan, 1980, 'Teaching of Music', Sterling Publications Pvt. Ltd., New Delhi.
3. Connors Abigail, 2004, Early Childhood Music Specialist- '101-Rhythm Instrument, Activities of Young Children', Grayphone House.
4. Dogulas, H. R. & Mills, H. H., 1948, "Teaching in High-School', The Ronald Press, New-York.
5. Giles, M. M. Cogan, D. & COX, 1991, 'A Music and Art Program to Promote Emotion Health in Elementary School Children', Journal of Music Remedy, 28:135-148.
6. Bagley, W.C., 1918, "The Education Process", Macmillan Co, New-York.
7. Harry C. McKown, 1938, Activities in the Elementary School, Mc Graw Hill, N. Y.
8. MC Kown, H. C., 1952 'Extracurricular Activities' (Third Edition), New York, Macmillan Co.
9. Mahender Reddy Sarsani, 2005, First Edition, Published by Sarup & Son, Ansari Road Dariyaganj, New Delhi.
10. Kapila Vatsyayan, 1996, Bharat Natya Sastra, Sahitya Academy, New Delhi.
11. www.sacsa.sa.edu.au
12. Rena Upitis, 2011, ' Arts education for the development of the whole child.', Elementary Teachers Federation of Ontarlo, Toronto.
13. Onkar Prasad, 2010 'Folk Music & Folk Dances of Banaras', Anthropological Survey of India.

14. K. P. Bahadur, 1978, 'One Hundred Rural Songs of India', Motilal Banarasidass Indological Publishers & Booksellers, New Delhi.
15. Arnold Rose, 1952, "The Singer & Voice, Faber and Faber"

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्तरभारतीयऔरदाक्षिण्यसंगीतकेप्रमुखभेदोंकोस्पष्टकरें।
2. भारतीय संगीत के प्रमुख शैलियों का विस्तार से वर्णन करें।

इकाई3- रंगमंच व नाटक- अभिव्यक्ति और रचनात्मकता का एक बेहतरीन प्रभावी माध्यम

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 रंगमंच व नाटक की संकल्पना
3.4 नाटक के विविध स्वरूप
 3.4.1 एकांकी
 3.4.2 प्रहसन
 3.4.3 सम्पूर्ण नाटक
 3.4.4 व्यावसायिक रंगमंच
 3.4.5 शौक़िया रंगमंच
 3.4.6 समूह नाटक
 3.4.7 एकल नाटक
 3.4.8 एकालाप
 3.4.9 मूक अभिनय
 3.4.10 नक़ल (मिमिक्री)
 3.4.11 कठपुतली
 3.4.12 संगीत/ गीत/ नृत्य/ नाटक
 3.4.13 बाल नाटक
3.5 विद्यालयी शिक्षा में रंगमंच का महत्व
3.6 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

सीखने- सिखाने और खुद को □गे बढ़ाने के लिए रंगमंच और नाटक एक बेहतरीन माध्यम ह□ चूँकि □प भी इसी सीखने और सिखाने के क्षेत्र में प्रवेश करने जा रहे हैं, इसलिए इसके व्यापक असर को जब □प समझेंगे तो □प भी इसके सरोकार से अछूते नहीं रहेंगे और इसपर मुग्ध होकर अपनी शिक्षण कला को एक नई ऊंचाई पर ले जाना चाहेंगे। और, जब □प ऐसा कर लेंगे तो यकीन कीजिये, □पके छात्र □पके मुरीद हो जाएंगे।

जीवन के हर क्षेत्र को समझने और उसे अपने साथ लेकर चलाने के लिए गणित, भाषा, सामान्य विज्ञान, सामान्य इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र □दि की जानकारी अनिवार्य होती ह□ इसी तरह रंगमंच और नाटक की जानकारी भी अनिवार्य ह□ जिस तरह अपने दो और दो चार का सीखा

हुआ ज्ञान हमारे जीवन के हर क्षेत्र में हमारी मदद करता है, उसी तरह इतिहास हमें अपने समय के साथ-साथ आज के भी राजिनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिदृश्य को समझने में हमारी मदद करता है। ठीक इसी तरह रंगमंच और नाटक हमें अपने जीवन को रचनात्मक तरीके से सोचने और उसके सहारे आगे बढ़ने के लिए हमें रास्ता दिखाता है।

शिक्षण के क्षेत्र में रंगमंच और नाटक एक क्रांतिकारी बदलाव लेकर आता है। रंगमंच और नाटक केवल मनोरंजन का साधन भर नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के भीतर मानव गढ़ता है। एक शिक्षक का काम भी इसी मानव के भीतर मानव को गढ़ना होता है, इसलिए यह आपके संग-साथ होकर जीवन भर आपके कहे अनुसार चलेगा और छात्र आपके कहे मुताबिक। यह पाठ आपको रंगमंच और नाटक तथा इसके माध्यम से शिक्षण की मूलभूत बातों को सामने लाने की कोशिश करेगा।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1. रंगमंच व नाटक की संकल्पनाकोस्पष्टकरसकेंगें।
2. विद्यालयी पाठ्यक्रम में रंगमंच व नाटक के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगें।
3. नाटक के विविध स्वरूपकावर्णनकरसकेंगें।

3.3रंगमंच व नाटक की संकल्पना

तो आइए, आज हम आपके साथ कुछ नाटक और रंगकर्म पर बात करें। हमें यकीन है कि इसके बाद आप का भी मन करेगा नाटक करने का, क्योंकि हम दिन रात अपने जीवन में हर समय नाटक या अभिनय करते रहते हैं। इसीलिए शेक्सपियर ने कहा है कि "यह दुनिया रंगमंच अहि और हम सब इस रंगमंच के अभिनेता।"

आज जब हम रंगमंच पर बात करने बैठे हैं तो हमारे लिए यह समझना बहुत जरूरी है कि रंगमंच अभिव्यक्ति को किस तरह मजबूत और प्रभावी बनाता है। नाटक या रंगमंच पर बात करते हुए सबसे पहले तो यह जानना आवश्यक है कि हम रंगमंच या नाटक क्यों करें? हमारे जीवन में इसकी क्या सार्थकता या आवश्यकता है? इसके करने से हमारे जीवन में कौन से ऐसे परिवर्तन आएंगे, जिससे हमारा जीवन स्तरीय हो सकेगा और भावों और विचारों के स्तर पर हम अधिक जाग्रत और संवेदनशील हो सकेंगे। बहुत से अध्याय अच्छे होने के बाद भी उबाऊ लगने लगते हैं, क्योंकि शिक्षक उन्हें अत्यंत नीरस भाव से या बिना किसी लाग-लपेट के उसे पढ़ा देते हैं। छात्र समझे या नहीं, इसकी

ओर वे ध्यान नहीं देते। आप खुद सोचें, अगर हमें दिन का वर्णन करना अहो और इसे बताने में रात जैसी उदासी हो तो आपको कैसा लगेगा?

आप सबसे पहले यह देखें कि रंगमंच या नाटक हमारे अपने भाव को प्रकट करने का सबसे प्रभावी माध्यम है, साथ ही यह हमारी रचनात्मकता को आगे बढ़ाता है। हम चाहे जिस भी व्यवसाय में जाएं, रंगमंच हमारी सहायता करता है। यहाँ यह भी समझना जरूरी है कि रंगमंच केवल अभिनेता या एक्टर तैयार नहीं करता है, बल्कि यह व्यक्ति के भीतर एक सृजनशील, एक कल्पनाशील और अपने लक्ष्य की ओर पहुंचने को उत्सुक व्यक्ति का एक मानस बनाता है। नाटक दृश्य विधा है। इसे समझने के लिए नाटक देखना बहुत आवश्यक है। यह कुछ वैसे ही है कि किसी मिठाई का स्वाद जानने के लिए उस मिठाई को खाना जरूरी है। नाटक की अपनी सीमाएं हैं, लेकिन अपनी सीमाओं में वह अनंत संभावनाएं लेकर आता है और सामने बैठे दर्शकों को दादी-नानी के किस्सों की तरह कल्पनाओं के लोक में ले जाता है। नाटक दर्शकों की सृजनशीलता को भी आगे बढ़ाता है। इसे इस रुप में समझा जाए कि जैसे रतन थियम कहते हैं कि अगर मुझे फिल्म में चांद को दिखाना है तो मुझे अपने कैमरे को चांद तक ले जाना होगा। लेकिन नाटक में जब पात्र कहता है कि चांद निकला है तो दर्शकों को बगैर चांद के ही चांद दिख जाता है। अर्थात यह नाटककार और नाट्य कलाकार के साथ-साथ दर्शकों की भी कल्पना-शक्ति को विकसित करता है। इसलिए, जब आप रंगमंच और नाटक के माध्यम से अपने पाठ अपने छात्रों तक लेकर जाएंगे, तब वे स्वयं भी इस नाटक और पाठ का हिस्सा बन जाएंगे। कहना अन होगा कि तब ये पाठ उन्हें बेहद आसानी से समझ में आएंगे और कालांतर में ये छात्र शिक्षक की भूमिका में अपने सीखे गए इन पाठों को अपने छात्रों के लिए उपयोग में लाएँगे। इस तरह से रंगमंच और नाटक की कोई पारंपरिक कक्षा के बिना भी आप और आपके छात्र रंगमंच और नाटक से जुड़कर अपने क्षेत्र में बेहतरी हासिल कर सकते हैं।

रंगमंच और नाटक के बारे में यह मान लिया जाता है कि यह केवल नाचने, गाने- बजाने की चीज है। भद्द भाषा में इस पेशे से जुड़े लोगों को भांड, मसखरा, जोकर, नचनिया, गवनिया जैसे विशेषणों से नवाजा जाता है। क्या आपको लगता है कि यह ऐसा है? अगर है तो क्या आपको इस बात का अहसास है कि आप और हम सब भी इस जीवन में बस केवल ये सब ही हैं, क्योंकि हम अपने वास्तविक जीवन में हर पल अभिनय करते रहते हैं। फर्क केवल इतना है कि हम जीवन में किए जा रहे हर पल के अभिनय से बेखबर हैं, जबकि मंच पर पात्र और मंच के सामने दर्शक इस पल-पल हो रहे अभिनय के प्रति सजग और सचेत हैं।

निजी जीवन में हम किस तरह अभिनय में रत रहते हैं, इसे ऐसे समझिए। फर्ज़ कीजिये कि सामनेवाले, जिससे आपको बात करना पसंद नहीं और वह लगातार आपसे बात करके आपको बोर किए जा रहा है या आपका बेहतरीन समय नष्ट कर रहा है। ऐसे में आप क्या करेंगे? क्या आप उससे

सीधे –सीधे कह सकते हैं कि “भाई मेरे, आप हमें बहुत पका रहे हैं। हमारा समय मत खाइये और जाइए यहाँ से।“ ...न! आप ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि ऐसे में बहुत सी तकनीकी समस्याएँ सामने आ जाएंगी। सबसे पहली तो शिष्टाचार की समस्या। दूसरे, सामनेवाले से कहने पर उसके बुरा मान जाने की समस्या। और अगर वह व्यक्ति आपका बॉस या बहुत बड़े कद का हो, तब तो आपकी छुट्टी। अब ऐसे में आप क्या करते हैं?

1 आप जम्हाई लेते हैं।
2 आप बार-बार घड़ी की ओर देखते हैं।
3 आप अपने चेहरे पर उस स्थान और परिवेश से निकल जाने का भाव लाने लगते हैं।
4 आप एक-दो बार बाहर-भीतर करते हैं।
5 बार-बार उससे चाय- पानी की पूछने लगते हैं।
6 इधर-उधर देखने लगते हैं।
7 मोबाइल और नेट का जमाना है। इसलिए आप नेट सर्फ करने लगते हैं।
8 घर पर हैं, तो अनायास अपना गुस्सा बच्चों या घर के अनाया सदस्यों पर उतारने लगते हैं।
9 आपके सर में दर्द होने लगता है।
10 आप चिड़चिड़ाने लगते हैं।

और यह सब करते हुए आपको अहसास भी नहीं होता कि आप कोई अभिनय कर रहे हैं। दरअसल, यह जीवन का अभिनय है, जीवन का हिस्सा। शिक्षा, जो हमारे जीवन का सबसे अहम हिस्सा है, बल्कि यूं कहें कि यह जीवन ही है और जो हमारे जीवन का निर्माण करती है, उसे जीवन के इस अभिनय से जोड़ देने से उसका आस्वाद बढ़ जाता है और आपका सिखाने का काम आसान हो जाता है। इसलिए, इस जीवन को भरपूर तरीके से जीने और उसमें अपनी लियाकत से कुछ और सुनहरे पंख जोड़ देने से आप एक नायाब पंछी हो जाते हैं। आपके कार्य के पंख जगमगाने लगते हैं।

ऐसा कतई न समझें कि हम आपको रंगमंच और नाटक पढ़ाने के लिए खुद को हीरो या हीरोइन बनने या छात्र-छात्राओं को हीरो या हीरोइन बनाने की बात कर रहे हैं। ऊपर के उदाहरण से यह स्वयं सिद्ध है कि अभिनय से हमारा –आपका संबंध सांस और जीवन की तरह का है। अब सिर्फ एक सहज सवाल यह है कि रंगमंच और नाटक को आप अपने और आपके छात्रों के आनेवाले व्यवसाय से कैसे जोड़ सकते हैं? ध्यान रखिए कि आपके ये छात्र आगे चलकर कोई डॉक्टर, कोई इंजीनियर, कोई एमबीए, कोई तकनीशियन भी बन सकते हैं। हो सकता है, इनमें से बहुतों का रंगमंच और नाटक से कोई परिचय भी ना हो। बहुतों का सपने में भी अभिनय या रंगमंच और नाटक की ओर जाने का ख्याल न हो। बावजूद इसके, रंगमंच और नाटक उन्हें उनके काम के लायक ऐसी ठोस ज़मीन तैयार करता है, जो इन छात्र-छात्राओं को आगे बढ़ने में सहायक बनता है। और, शिक्षक होने के नाते आप यह समझिए कि ये आपके ही बच्चे हैं और जिस तरह से आपको अपने बच्चों को अपना लक्ष्य पाते

देख असीमित प्रसन्नता मिलती है, उसी तरह छात्र-छात्रा रूपी इन बच्चों की कामियाबी से भी आपको वैसी ही खुशी मिलेगी। मतलब, रंगमंच और नाटक के जरिये आप उनमें वह आत्मविश्वास का निर्माण करेंगे, जो उनके भावी कैरियर के लिए जरूरी है। रंगमंच और नाटक के माध्यम से छात्रों में अधिक से अधिक अपने विषय और अपने जीवन से एक्सपोजर लाने के लिए सबसे पहले आपको अपने मन से यह बात निकालनी होगी कि:

1 रंगमंच और नाटक एक फालतू विषय है।
2 जीवन में इसका कोई स्थान नहीं है।
3 इससे किसी का कोई भला नहीं हो सकता।
4 इससे केवल घर फूँक, तमाशा देख वाली बात ही चरितार्थ होती है।
5 इसमें सम्मान नहीं है।
6 दूसरे लोग जाएँ रंगमंच और नाटक करने, हमारे घर का कोई नहीं जाएगा।
7 लड़कियों के लिए यह फील्ड नहीं है। उन्हें दूसरे घर जाना होता है। इसलिए उन्हें मर्यादा में रहना चाहिए।

व्यावहारिक रूप से अब आप इसे ऐसे समझें कि आपको विज्ञान का कोई विषय पढ़ाना है, मसलन, पानी कैसे बनता है या कार्बन डाइ ऑक्साइड कैसे काम करता है? बिजली कैसे बनी या अलजेबरा का सिद्धान्त क्या है? इतिहास को लें, बाबर का जन्म कब हुआ और प्रथम विश्व युद्ध के समय भारत की क्या स्थिति थी? अर्थशास्त्र की बात करें कि मुद्रा-स्फीति की दर क्या है और सोना कैसे बाजार की अर्थ-व्यवस्था को प्रभावित करता है? भूगोल पर आयें और ब्रह्मांड से लेकर सागर-महासागर और सभी देशों ई भौगोलिक स्थिति, या सबसे पहले चलिए, बच्चों को ग्लोब देखना ही सिखाना है...! ....ये सारे विषय कुछ ऐसे हैं, जिन्हें याद करने में छात्रों को पसीना छूटने लगता है। विज्ञान गणित में और इतिहास भूगोल में गड्ड-मड्ड हो जाता है। इतिहास पुरुषों का जन्म और मरण तथा उनके ऐतिहासिक कामों की तिथियाँ याद करने में हमें तारे ज़मीन पर दिखाई देने लगते हैं। ....लेकिन, रंगमंच और नाटक के जरिये आप इन बाधाओं को पार कर सकते हैं। सोचिए, जब आपके छात्र बाबर और हुमायूँ के साथ-साथ शेरशाह सूरी की जानकारी चुटकी में दे दें या विज्ञान के हर फॉर्मूले को चुटकी में हल कर लें, तो आप उन छात्रों के गौरवशाली शिक्षक होने में गर्व महसूस करेंगे न!

अब सवाल यह है कि यह सब होगा कैसे? तो यह बहुत आसान है। लेकिन, इस आसान मंजिल को पाने के लिए आपको भी थोड़ा बहुत सोचना –विचारना होगा। सबसे पहले तो आपको अपने मन को इस बात से मुक्त रखना होगा कि

1 आप शिक्षक या गुरु हैं। ऐसा समझने से आप जाने-अंजाने अपना रोब अपने छात्र-छात्राओं पर जताएँगे। छात्र आपसे डरेंगे और आपके सामने पड़ते ही वे दूसरा रास्ता अखियार कर

लेंगे। आपको खुशी हो सकती है, लेकिन यह आपको आपके ही शिक्षण कर्म से विमुख कर देगा और आपके छात्र ही आपके नहीं रह जाएंगे।

2 आप शिक्षक या गुरु हैं, इसलिए उनसे अधिक जानते हैं। आज के समय में ऐसी सोच हमारी सबसे बड़ी भूल हो सकती है। आज के बदलते समय और परिवेश में, जहां हर पल बच्चा नेट, मोबाइल और डिजिटल दुनिया से जुड़ा रहता है, वैसे में उसके लिए आपकी यह सोच एक शिक्षकीय आतंक का उपहास लगने लगता है। आज के बढ़ते समय में आज की पीढ़ी तकनीक रूप से हमसे चार कदम आगे ही रहती है। अब वो दिन नहीं, जब माँ-बाप बच्चे को रेडियो दिखाते और समझाते थे। आज तो छोटे से छोटा बच्चा भी हमसे ज्यादा बढ़िया तरीके से मोबाइल हैंडल कर लेता है। ...तो ऐसे में, बच्चों पर शिक्षकीय आतंक या रोब हमें ही हास्यास्पद बनाता है।

3 बच्चे आपको नया कुछ नहीं बता सकते। हम अपनी दुनिया और घर-परिवार, समाज की दुनियादारी में उलझे रहते हैं। बच्चे नेट के जरिये सबकुछ जानते-सीखते रहते हैं। ऐसे में आप उनकी जानकारी का सम्मान करेंगे तो वे भी आपको अपना आदर देंगे।

4 यह मत बताइये कि गणित, विज्ञान, इतिहास जैसे विषय बोझल और हिन्दी या अँग्रेजी जैसी भाषा कठिन और नीरस होती है।

5 या कि यह पाठ्यक्रम ही इतना बेकार बना है कि कैसे शिक्षक पढ़ाए और कैसे छात्र पढे?

6 यह उन्हें जरूर बताएं कि हमारा काम धार के साथ बहना नही है, क्योंकि धार में तो मुर्दे भी बह जाते हैं। हमारा काम धार के विपरीत जाकर नया कुछ कर लाना है। नया करने की चाहत ही नए-नए प्रयोगों को जन्म देती है, जैसे रंगमंच और नाटक के जरिये शिक्षण को समझना और उन्हें व्यवहार में लाना।

तब, ऐसे में उन्हें कैसे पढ़ाया जाए और कैसे अपेक्षित रिजल्ट दिलाया जाए! आखिर, उनके दो और दो का फॉर्मूला क्या है? कैसे उन्हें गणित, विज्ञान, इतिहास जैसे बोझल और हिन्दी या अँग्रेजी जैसी भाषा के साथ सरोकार किया जाए? इसका एक ही जवाब है- रंगमंच और नाटक। आप :

1 छात्रों को अपना मित्र मानें।

2 उनसे प्रेम और स्नेह का बर्ताव करें।

3 उनके साथ खेलें, कूदें, उनकी पसंद के विषय पर (चाहे वह सिनेमा या टीवी ही क्यों न हो, पर बातें करें। हाँ, बातें करते हुए आपको यह ख्याल ज़रूर रखना है कि इन बातों से अंत में उन्हें कितना आनंद आया और उन्हें क्या शिक्षा मिली? लेकिन इसे पंचतंत्र की कथा की तरह "इस कहानी से हमें यह सीख मिलती है कि....." न कहें या दुहराएँ, बल्कि उसे अपनी बातचीत के जरिये उस बातचीत से निकले सार को सीख की तरह पकड़ा दीजिये। ध्यान रखें कि यह भी थिएटर का ही एक रूप है।

4 शिक्षक या गुरु होने के नाते अपनी रुचि को भी परिष्कृत करें, अन्यथा छात्र आपकी बात को "पर उपदेश, कुशल बहुतेरे" की तरह ले लेंगे।

5 हर विषय या उस विषय के पाठ को दृश्यात्मक तरीके से खुद देखने का अभ्यास करें और यही अभ्यास अपने छात्रों से भी करवाएँ। अगर आपको एक ग्लास पानी की ही व्याख्या करनी है तो छात्रों को बिना पानी के ग्लास की मौजूदगी के लगना चाहिए कि उनकी कक्षा में उनके सामने एक ग्लास पानी रखा हुआ है। यही थिएटर और नाटक है।

6 आर्किमिडीज़ का सिद्धान्त हो या न्यूटन का, उस सिद्धान्त को आप छात्रों से अभिनीत करवाएँ। इससे एक सरसता और समरसता के साथ वह सिद्धान्त उनके मन में प्रवेश कर जाएगा। उस सिद्धान्त को याद करते हुए वे इस पाठ को अभिनय द्वारा समझने और इसके जरिये वे आपको भी याद करेंगे- पूरी दृश्यात्मकता के साथ।

7 ये सब थिएटर के माध्यम हैं, जिनके साथ आपको भी आनंद आता है और छात्रों को भी। और आनंद से सीखी हुई हर बात हमेशा के लिए याद रह जाती है। यह विषय के साथ प्रयोग है। छात्र उन शिक्षकों को अधिक पसंद करते हैं जो अपने विषय में अलग अलग तरह से प्रयोग करते हैं। यही बात इतिहास और भूगोल के साथ भी है। इतिहास का एक पात्र या ग्लोब अगर छात्र खुद बन जाए और दूसरे छात्र अपग-अलग देश, तो निस्संदेह कक्षा सरस हो जाएगी और सबक उन्हें ताजिंदगी याद रहेगा।

नाटक दृश्य का माध्यम है। एक समय था, जब कहा जाता था कि नाटक करने के लिए एक विषय, एक कहानी का होना ज़रूरी है। अब ऐसा नहीं है। नाटक में हो रहे लगातार प्रयोग इसे बहुविध रूप दे रहे हैं। इसीलिए नाटक या रंगकर्म को शिक्षा का एक माध्यम बनाए जाने को शिक्षा पद्धति का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाने लगा है। इसलिए भाषा हो या विज्ञान, अर्थशास्त्र हो या समाजशास्त्र, रंगमंच हर जगह विषय को समझना आसान कर देता है। अर्थशास्त्र की परिभाषा को इतिहास के चरित्रों के साथ उसके भौगोलिक परिवेश में लेकर समाज के उस समय से लेकर आज के परिवेश तक जोड़कर देखेंगे तो सोचिये, आपका शेरशाह सूरी अपने सड़क बनाने के इतिहास की कल्पना और उसे ग्रैंड ट्रंक रोड बनवाने की सोच और आज विभिन्न सरकरों द्वारा अपने यहाँ 4 से 8 लेन वाली सड़कें बनवाना- और उसमे अर्थ और बाजार के सिद्धांत को प्रतिपादित करना कि सड़क अच्छी रहने पर हमारा मार्ग व्यय- समय, श्रम और धन के लिहाज से कितना कम हो जाता है और इससे कितनी बचत हो जाती है, समाज अपने उन्नत स्वरूप में आता है। कहने के ये सब अलग अलग विषय हैं, मगर ये सभी विषय एक साथ मिलकर एक कहानी बुनते हैं। यहाँ आप सभी शिक्षक मिलकर या अलग अलग - इसे एक नाटकीय स्वरूप दे सकते हैं। मुझे दिख रहा है कि मेरी लिखी इन बातों से आपकी कल्पना के तार भी झनझनाने लगे हैं। आपके मन में भी अपने विषय को नए तरीके से सोचने के खिड़की दरवाजे खुलने लगे हैं। ....बस। यही है रंगमंच का उपयोग- अपने काम के क्षेत्र में।

आप तसल्लीदाँ हो सकते हैं कि आपके इस प्रयोग से आपका मन खुश रहेगा और आप निरंतर रचनात्मक और सृजनशील रहेंगे।

रंगमंच मानस परिवर्तन का भी बहुत बड़ा माध्यम है। आप आजमाइयेगा और फिर मेरी बात पर मुझे याद कीजियेगा। आपके वैसे छात्र, जो हठी हों, पढने में मन न लगाकर अन्य बातों की ओर अधिक ध्यान देते है, उन्हें नाटक के माध्यम से पाठ की ओर मोड़िये। उन्हें नाटक के द्वारा विषय का ज्ञान दीजिये। हो सकता है, शुरू में वे आपकी बातों ओर ध्यान ना दें, लेकिन मेरे विश्वास के साथ आप भी अपना विश्वास जोड़ सकते हैं कि कालान्तर में जीत आपकी होगी। यह आपके लिए कितने गर्व का विषय होगा कि असामाजिकता की ओर बढ़ते कदम को आपने सामाजिक सरोकारों से जोड़ दिया।

नाटक के कई रूप हैं जिनके माध्यम से आप अपने सपनों को हकीकत के नए नए जामे पहना सकते हैं। भरत मुनि का कहना है कि नाटक में कुछ दृश्यों, जैसे युद्ध, मारपीट, खाना, सोना आदि जैसे दृश्य नहीं दिखाए जाने चाहिए, क्योंकि इससे दर्शकों के मन पर बुरा असर पड़ता है। संस्कृत नाटकों में आज भी ऐसे दृश्य नहीं दिखाए जाते। लेकिन, पाश्चात्य नाटकों के असर से इन दृश्यों को दिखाया जाने लगा। इससे वास्तविकता आई, क्योंकि एक नायक अगर युद्ध करता है तो उसे विश्राम की भी ज़रूरत पड़ेगी, उसे भूख भी लगेगी और उसके हाथों मारे गए लोगों के अपने दर्द और करुणा भी रहेगी। अब यह है कि हम इन दृश्यों को कैसे दिखाएँ और उनको दिखाने के पीछे हमारा प्रयोजन क्या होता है? अगर हम उसे वास्तविकता यानी रीयलिज़्म की तरह दिखाते हैं तो यह एक सहज विवरण और दृश्यबंध होगा। इसलिए, अगर भजन गाने के समय सभी श्रद्धावनत होकर भजन गाएँगे। परंतु अगर हमें इसे ही व्यंग्य या विद्रूपता के साथ दिखाना है तो पूरा दृश्यबंध बदल जाएगा।

3.4नाटक के विविध स्वरूप

नाटक को अपने शिक्षण के प्रयोग के रूप में उतारने के लिए आइए, नाटक के कुछ स्वरूपों से आपका परिचय करवाते हैं। हमारा उद्देश्य लेकिन इन स्वरूपों के विस्तार में या उनकी स्थापना और नियम पर जाना नहीं है, बल्कि इनका एक परिचय भर देना है, ताकि रंगमंच और नाटक को अभिव्यक्ति के स्तर पर आप जान और देख सकें। एकांकी, प्रहसन, सम्पूर्ण नाटक, मूकाभिनय, नकल (मिमिक्री), कठपुतली, समूह, एकल, शौकिया रंगमंच, व्यावसायिक रंगमंच, कमर्शियल रंगमंच आदिइसके कुछ स्वरूप हैं।

3.4.1 एकाँकी:

यह नाटक एक अंक का होता है। दृश्य इसमें अनेक हो सकते हैं, कथानक की ज़रूरत के मुताबिक। इसकी अवधि छोटी यानी 30 से 40 मिनट की होती है। किसी एक छोटे से कथानाक या घटना क्रम को इस छोटी सी अवधि में कहने की कोशिश की जाती है। समय के साथ अब स्थितियाँ

बदली हैं और अब बड़े नाटकों को भी छोटा करके एकाँकी की तर्ज़ पर मंचित किया जाने लगा है, ताकि दर्शक कम से कम विषय-वस्तु को तो जान और समझ ले। यह एक तरह से बड़े कलेवर को छोटे कलेवर में समेटने की अच्छी और सराहनीय प्रयास है। उदाहरण के लिए भारतेन्दु हरिश्चंद्र का नाटक "अंधेर नगरी चौपट राजा" बहुत ही प्रसिद्ध और सम-सामयिक हास्य-व्यंग्य प्रधान नाटक है। यह एक पूरा नाटक है। लेकिन कई बार इसे एक ही अंक में आधे घंटे में खेल लिया जाता है। ऐसे में यह निर्देशक पर तय करता है कि वह एक सम्पूर्ण नाटक में से कैसे उसकी एडिटिंग करके पूरा नाटक प्रस्तुत करे, जिसके नाटक का मूल भाव भी बचा रह जाए और दर्शकों के आनंद में कोई कमी भी ना रहे।

3.4.2 प्रहसन:

मूलत: इसमें हास्य भाव प्रधान रहता है। इसे नाटक की किसी भी विधा के साथ रखा जा सकता है। इसका उद्देशय बेशक हँसना-हंसाना है, लेकिन यह हँसना-हंसाना उद्देश्यपरक होता है। आम तौर पर इसका कलेवर भी छोटा होता है, लेकिन हर बार यह ज़रूरी नहीं। भारतेन्दु हरिश्चंद्र का नाटक "अंधेर नगरी चौपट राजा" को इसमें रखा जा सकता है।

3.4.3**सम्पूर्ण नाटक** :

नाटक अपने पूरे विस्तार में खेला जाता है। इसकी स्क्रिप्ट भी पूरे विस्तार से लिखी जाती है। संस्कृत नाटकों में लगभग तीन घंटे का नाटक खेला जाता था। हिन्दी में भी संस्कृत, पारसी और पाश्चात्य थिएटर के असर से आरंभ में तीन घंटे के नाटक खेले जाते थे। ये नाटक तीन अंकों में होते थे। दो बार मध्यांतर होता था। गुजराती और मराठी में आज भी ढाई से तीन घंटे के नाटक के बगैर नाटक को सम्पूर्ण नाटक नहीं माना जाता। लेकिन, हिन्दी में धीरे-धीरे अवधि में कमी आई और आज आम तौर पर सभी सम्पूर्ण नाटक साठ से एक सौ बीस मिनट के बीच खेल लिए जाते हैं। मध्यांतर भी अब इनमें आम तौर पर नहीं पाया जाता। लेकिन, ऐसा भी नहीं है कि हिन्दी के सभी नाटक अब एक से डेढ़ घंटे या बिना मध्यांतर के ही मंचित किए जाते हैं।

3.4.4 व्यावसायिक रंगमंच:

इस बात पर बड़ी बहस छिड़ी रहती है कि नाटक कलात्मक हो या व्यावसायिक। व्यावसायिक नाटक का एक अलग और बड़ा कलेवर होता है। सेट, प्रोप्स, प्रकाश, कलाकार, निर्देशक, स्क्रिप्ट आदि का खास ख्याल रखा जाता है। असल में, नाटक का मूल उद्देश्य है इसकी कलात्मकता और इसके माध्यम से मनोरंजनात्मक तरीके से दर्शकों तक अपना संदेश पहुंचाना, साथ ही नाटक को आजीविका से जोड़ना। लेकिन, हिन्दी में अभी तक इसके माध्यम से आजीविका एक

यक्ष प्रश्न है। इसकी व्यावसायिकता पर पूरी व्यावसायिकता से नहीं सोचे जाने का नतीजा है कि आज भी हिन्दी में नाटक कैरियर नहीं बन पाया है। मराठी, बंगला और गुजराती नाटकों में प्रयोगात्मक नाटकों के साथ-साथ व्यावसायिक नाटक बड़े पैमाने पर खेले जाते हैं। यहाँ नाटक देखने का संस्कार है, जो अभी के टीवी और सिनेमा की बाढ़ में भी नहीं मरा है। इसलिए यहाँ शौकिया नाटक के भी चालीस से पचास सौ एक हाथ की ताली पर हो जाते हैं, जबकि व्यावसायिक नाटक के सौ-दो सौ शो मामूली बात है। हिन्दी में तथाकथित बड़े नाटकों के भी पचास शो होना बहुत बड़ी उपलब्धि हो जाती है।

3.4.5 शौकिया रंगमंच:

शौकिया या एक्सपेरिमेंटल या अमेच्योर नाटक में भी नाटक पूरे विस्तार से खेला जाता है। हिन्दी रंगमंच और नाटक के शौकिया चरित्र के बारे में बहुत बातें की जाती हैं। आम तौर पर हिन्दी रंगमंच और नाटक का शौकिया होना इसकी कमजोरी के रूप में देखा जाता है। नीलम मान सिंह से निजी बातचीत में मशहूर रंगकर्मी बीवी कारंत ने शौकिया रंगमंच के संबंध में कहा था,''शौकिया रंगमंच का आंदोलन इस देश के हर क्षेत्र में और हरेक गांव में फैलाना है और यही रंगमंच के टिके रहने का आधार है। शौकिया रंगमंच ही पेशेवर रंगमंच का भरण-पोषण करता है।' कारंत जी आगे टिपण्णी करते हैं, ''शौकिया रंगमंच जोखिम लेता है। वह प्रारूप के साथ प्रयोग करता है और उसकी प्रकृति नवाचारी होती है। वित्तीय और कार्यगत दबावों के बावजूद, तमामतर कठिनाइयों के बाद भी आगे बढ़ता जाता है, क्योंकि इसके पास खोने को कुछ नहीं है। यह शौकिया रंगमंच ही है, जिसने रंग आंदोलन को सक्रिय और भारत में जीवंत बनाये रखा है।' बीवी कारंत की यह मान्यता और यह जिद ही हमारे पाठयक्रम में रंगमंच और नाटक को ज़मीन मुहय्या करने का पक्ष देते हैं, क्योंकि रंगमंच और नाटक में जिसतरह से एक ग्राउंड प्लान की ज़रूरत होती है, उसी तरह से शिक्षण और प्रशिक्षण में भी।

3.4.6 समूह नाटक:

नाटक एक सामाजिक कर्म है। इसलिए, नाटक खेलते समय एक ग्रुप निर्माण की परिकल्पना की जाती है। चूंकि एक नाटक में एक कथा होती है और उस कथानक में कई किरदार होते हैं, इसलिए नाटक करते समय प्रत्येक किरदार को निभाने के लिए अलग-अलग कलाकारों की ज़रूरत पड़ती है। यूं तो नाटक करना ही अपने आप में एक कठिनतर कार्य है, ग्रुप नाटक भी उतना ही दुरूह है। सभी कलाकारों का आपस में भाव, भाषा, भंगिमा, देह-लय आदि का संयोजन गहरे अभ्यास और एक-दूसरे को समझने की मांग रखता है। लेकिन, इसके साथ इसका एक सहज पहलू यह भी है कि एक कलाकार के कमजोर पड़ने पर दूसरे कलाकार उसे अपनी ओर से मजबूत बना लाते हैं, क्योंकि मंच एक जीवंत विधा है, सारा घटना-क्रम दर्शकों की आँखों के सामने हो रहा है। इसलिए, वहाँ न तो पल

भर का विश्राम है और न एक कदम गलत पड़ जाने पर दूसरा कदम उठाने की योजना बनाने का वक़्त। जो करना होता है, उसी समय अपने प्रेजेंस ऑफ माइंड (प्रत्युत्पन्नमति) का सहारा लेकर □गे बढ़ना होता है।

3.4.7 एकलनाटक:

एकल नाटक एक साथ ही अत्यंत दुरूह और सरल है। नाटक की इस विधा पर अभी तक अधिक ध्यान नहीं दिया गया है, जबकि भांड, बहुरूपिया □दि इसी एकल के स्वरूप हैं। तीजन बाई की पंडवानी को □ज एकल नाटक के उदाहरण के रूप में देखा जाता है। अँग्रेजी में इसे सोलो प्ले और मराठी और गुजराती में इसे एकपात्रीय नाटक कहा जाता है। रंगकर्मियों में इसे लेकर बड़ा मतभेद रहा है। चूंकि, सोलो प्ले या एकल नाटक में एक ही पात्र मंच पर रहता है, इसलिए माना जाता है कि यह नाटक के सामूहिक कर्म की अवधारणा को खंडित करता है, जबकि ऐसा बिलकुल नहीं है, बल्कि एकल नाटक करना अपने □प में एक बहुत बड़ी चुनौती है। एक से डेढ़ घंटे तक मंच पर अकेले नाटक प्रस्तुत कराते हुए दर्शकों को बांधे रखना किसी कलाकार और उसके निर्देशक की सबसे बड़ी चुनौती है। नाटक में □ए सारे चरित्रों को इसतरह प्रस्तुर करना कि दर्शकों को उतने चरित्र मंच पर रूपायित होते दिखें, उतनी घटनाएँ घटती दिखें, उतने हालात और भाव व मुद्राएँ दिखें- और यह एक कुशल अभिनेता ही कर सकता है। दूसरे, भले मंच पर अभिनेता एक ही रहता या रहती है, मगर यह नाटक की सामूहिकता का पूरा पालन करता है, क्योंकि इसमें नाट्य लेखक, निर्देशक, मेक-अप, कॉस्ट्यूम, स्टेज, संगीत, प्रकाश □दि की व्यस्व्स्था का एक पूरा का पूरा ग्रुप रहता है। मशहूर रंगकर्मी विभा रानी ने सोलो नाटक को जन-जन तक पहुंचाने और इसे ग्रुप नाटक के बार-अक्स रखने की पुरजोर कोशिश की, जिसका यह नतीजा है कि अब एकल नाटक भी रंग- समूहों द्वारा किए जाने लगे हैं और सरकारी □योजनों में भी एकल नाट्य महोत्सव होने लगे हैं।

3.4.8 एकालाप:

एकल और एकालाप को □म तौर पर एक ही मान लिया जाता है, जबकि दोनों अलग-अलग है। एकल एक सम्पूर्ण नाटक है, जिसे मंच पर एक अकेला कलाकार मंचित करता है, जबकि एकालाप एक तरह का एकल या स्वयं से संवाद है, जिसे अँग्रेजी में मोनोलोग कहते हैं। इसे एक तरह की किसागोई कह सकते हैं। अभिनय और स्क्रिप्ट के स्तर पर भी एकल और एकालाप में बहुत अंतर होता है।

3.4.9 मूकाभिनय:

मंचीय नाटक यूं तो संवाद के अलावा देह, और आंगिक अभिनय का खेल है, मगर मूकाभिनय या अँग्रेजी में जिसे माइम कहते हैं, एक खास और बहुत अलग तरह की विधा है। यह अत्यंत चुनौतीपूर्ण है, क्योंकि इसमें संवाद बिलकुल नहीं होते। अभिनेता को सबकुछ अपने हाव-भाव और देह की भाषा से ही अभिव्यक्त करना होता है। माइम का प्रयोग हालांकि आज के आधुनिक नाटकों में भी होता है, जहां कम साज-सज्जा और मंच पर प्रतीकात्मकता के साथ नाटक खेला जाता अहै। जैसे, अगर पात्र पानी पीने का अभिनय करता है तो रियलिस्टिक रूप में वह ग्लास में पानी रखकर उसे पीने का अभिनय करेगा। माइम के दूसरे रूप में वह खाली ग्लास से भी पानी पीने का अभिनय करेगा। अब खाली ग्लास से पानी की घूंट भरने, उसे निगलने आदि को वह कितनी विश्वसनीयता से करता है, यह उसकी अभिनय क्षमता पर निर्भर करता है। दूसरी स्थिति में उसके पास ग्लास भी नहीं है और उसे पानी पीने का अभिनय करना है तो ग्लास को लेने, पानी भरने, ग्लास को पकड़ने, पानी पीने आदि को वह माइम के द्वारा प्रस्तुत करता है। अभिनेता की असली परख माइम मे होती है।

3.4.10 नकल (मिमिक्री):

नकल को भी नाटक का एक हिस्सा माना जा सकता है, क्योंकि अपने अंग-संचालन के अलावा मुख-मुद्रा से चरित्र-विशेष की नकल उतारना एक कठिन काम है। इसे अँग्रेजी में मिमिकरी कहते हैं। मिमिक्री कलाकार आम तौर पर अभिनेताओं की आवाज की नकल करते हैं, खास तौर पर फिल्मों में उनके द्वारा बोले गए संवादों को उन्हीं की आवाज में बोलने की नकल, क्योंकि उनके पास कच्चा माल के रूप में उनके संवाद ही होते हैं। फिल्म कलाकार के संपर्क में ये नहीं रहते, इसलिए उनकी वसात्विक बातचीत से इनका कोई सरोकार नहीं रह पाता। फिल्म कलाकार एक ऐसा क्षेत्र है, जिससे सभी परिचित रहते हैं, इसलिए उनकी नकल करना मिमिक्री कलाकारों को भी अच्छा लगता है उयर सामने बैठे दर्शकों को भी। दूसरी बात, हमारे देश में अभी भी सिनेमा कलाकारों के लिए हमारे मन में वह आदर और सम्मान नहीं है, इसलिए उनके बारे में कोई भी गंभीरता से कुछ नहीं लेता। इसलिए अभिनेताओं की मिमिक्री हो जाती है, नेताओं की नहीं।

3.4.11 कठपुतली:

कठपुतली से आप सभी परिचित हैं। इनके खेल भी आप सबने देखे होंगे। हालांकि, अब इस विधा का लोप होता जा रहा है। इयसलिए नाटकों में कठपुतलियों के माध्यम से नाटक खेले जाते हैं, ताकि दर्शकों को एक नया रूप भी मिले और इस लोप होती विधा को पुन:जीवन। केवल कठपुतलियों के माध्यम से पूरे नाटक को खेला जाता है और कई बार कलाकार और कठपुतलियों के संयोजन के साथ। यह भी अपने-आपा में एक कठिन विधा है, क्योंकि कठपुतलियों की तरह चलना,

हाव-भाव करना बहुत बड़े शारीरिक अभ्यास और संतुलन की मांग रखता है। अभिनय की कठिनता का जिक्र बार-बार इसलिए किया जा रहा है, क्योंकि लोगों को, और खासकर अभिनय को कैरियर बनाने के इच्छुकों को लगता है कि अभिनय बेहद सरल काम है। रोना या हँसना, नाचना या गाना तो किसी को भी □ता है, जबकि हमारा मानना है कि "अभिनय और कुछ नहीं, बल्कि जीवन को ही मंच पर जीने का दूसरा नाम है।"

3.4.12 संगीत/गीत/नृत्य नाटक:

संगीत नाटक अपने नाम के अनुसार ही संगीत प्रधान है। इसके तहत खेले जानेवाले नाटकों को संगीत और लयात्मकता के साथ ही खेला जाता है। संवाद मुख्यत: पद्यात्मक होते हैं और संगीत में ही सारी अभिव्यक्ति होती है। गीत और नृत्य नाटक भी संगीत नाटक की तरह ही है। नृत्य के माध्यम से पूरी कथानक काही जाती है। कलाकार का इसमें नृत्य में पारंगत होना बहौत □वशयक है, जैसे संगीत नाटक में गायन पर उनका कमांड। जो कलाकार अभिनय के इन सोपानों को साध कर □गे बढ़ता है, उसका अभिनय संतुलन देखते ही बनाता है। वह अपनी गायकी और नृत्य कला से नाटक को एक नया □याम और अर्थ देता है।

3.4.13 बाल नाटक:

बाल-नाटक का असली उद्देश्य है, बच्चों को नाटक से जोड़ना। हमारे देश की विडम्बना है कि भरत मुनि और उनके नाट्य शस्त्र और हिन्दी में भारतेन्दु हरिशचन्द्र जैसों के बाद भी नाटकों को लेकर हमारे यहाँ गंभीरता नहीं है। इसलिए भी नाटक हमारी □जीविका का माध्यम नहीं बन पा रहा है। बच्चों में नाटक के संस्कार उन्हें निश्चित तौर पर एक सहृदय और विचारवान □ईउर अपने क्षेत्र में सिद्धहस्त बनाते हैं। बाल-नाटक का उद्देश्य है बच्चों में नाटक के संस्कार डालते हुए उन्हे नाटक के तत्व भी समझाना और नाटक के माध्यम से पंचतंत्र की तरह जीवन का सार समझाना। खेल-खेल में बच्चे जीवन का पाठ पढ़ जाते हैं। बच्चों के नाटक बच्चों द्वारा खेले जाने पर बाल-दर्शकों पर उसका बहुत अधिक असर पड़ता है और उनकी भी हिचक टूटती है।

सेट, डिजाइन, प्रोप्स, मेक-अप, कॉस्ट्यूम स्पीच □दि के साथ साउंड प्लान भी □वश्यक होता है। इससे नाटक में अतिरिक्त रंग □ता है। नाटक की क्वालिटी बढ़ जाती है। रंग-संगीत के संबंध में सत्यवत राउत अपने □लेख में कारंत जी की कई कही बातों को □धार बना कहते हैं, ''रंगमंच में सीनिक (दृश्य) और सोनिक (श्रव्य) के प्रभाव में ज्यादा अंतर नहीं होता। कुदरत की ध्वनियों को संवेदना को साथ सुनकर जब उन्हें ताल और लय में बांध दिया जाये तो ये संगीत हो जाता है। नाटक संगीत गीत से ज्यादा से ज्यादा स्पीच (वाचिक) के नजदीक होता है। नाट्य संगीत दृश्य की अभिव्यक्ति का ही एक रूप है। जैसे हम अलग परिस्थति में मूड बदलते हैं, ध्वनि को भी बदलना

चाहिए।' कारंत जी तो यहां तक मानते थे कि ''हम काल को भी संगीत की ध्वनियों से व्यक्त कर सकते हैं।'

3.5 विद्यालयी शिक्षा में रंगमंच का महत्व

एक बार फिर से, आपके पाठ्यक्रम में रंगमंच और नाटक को सम्मिलित करते हुए यह कहीं से ज़रूरी नहीं है कि आप रंगमंच और नाटक के क्राफ्ट में उलझ जाएँ। यह आपका विषय है भी नहीं। आपको तो बस, सार-सार गहि लिए, थोथा देत उड़ाय'' वाला काम करना है। रंगमंच और नाटक को अपने पाठ्यक्रम में इस्तेमाल करने के लिए आप अपने स्कूल या कक्षा में ही उपलब्ध वस्तुओं से नाटक का प्रभाव पैदा कर सकते हैं। किताब, कॉपी, पेन, पेंसिल बेंच, डेस्क, खल्ली आदि सभी वस्तुओं से आप ध्वनियों को पैदा कर उसमें संगीतात्मकता का संचार कर सकते हैं। इससे आपके ऊपर यह भी आरोप नहीं लगेगा कि आप बच्चों से पढ़ने के बहाने तरह-तरह की चीजें मँगवाते हैं और इस तरह से माता- पिता या अभिभावक की जेब भारी करते हैं। बल्कि, यह कल्पनाशीलता की ऊंचाई है कि ब्लैकबोर्ड पर खल्ली की घिस-घिस एक अजीब सी रहस्यमय आवाज पैदा करेगी। विषय को अपने पाठ्य क्रम के संसार से रंगमंच के संसार में लाने के लिए में नाटक के बाजार के दृश्य में विविध आंचलिक बोलियों तथा उच्चरित स्वरों का वैविध्य जिस वातावरण की सृष्टि करता है व एकान्तिक न होकर सार्वजनिन और सर्वकालिक बन जाता है। एक ही दृश्य में हमें संपूर्ण देश का प्रतिनिधित्व करने वाला रंग-संसार बन जाता है।'

एक अभिनेता के लिए कारंत जी अक्सर दुहराया करते, ''अभिनेता के लिए तीन ''पी' बहुत जरूरी है- पाइप, पोज और फिगर या पर्सनैलिटी। अभिनेता के लिए पूर्ण गायक होना जरूरी नहीं, लेकिन उसे संगीत का बोध जरूर विकसित करना चाहिए। वो तानसेन न भी हो तो कम से कम कानसेन जरूर हो।'

''लिखे हुए नाटक की विषयवस्तु को रंगशिल्प के रंग विन्यास में कैसे सोचें, उसी तरह से अपने पाठ को नाटक के माध्यम से कैसे सारस और असरदार बनाया जाए, यह इस लेख का उद्देशय है। पहले इसे नहीं सोचा जाता था। आज समय बदला है। बच्चों के सामने बहुत से साजो-सामान हैं। ऐसे में उन्हे पढ़ाई के प्रति आकर्षित करने और साथ ही साथ पढ़ाई के साथ-साथ उचित और सही संस्कार देने के लिए भी पाठ्यक्रमों में नाटक का प्रवेश बहुत आवश्यक है। इसे उन निर्देशकों की तरह न सोचा जाए, जिन्होने जयशंकर प्रसाद के नाटक को पढ़ा तो पाया कि बड़े-बड़े दृश्य हैं। युद्धों के विशाल वर्णन हैं। इन्हें मंच पर कैसे दिखाया जाये। इसके लिए हाथी, घोड़े, आदि कैसे लाएंगे, जबकि नाटक तरण थियम की अवधारणा की तरह है, जहां आप पर्दे की ओर इशारा कराते हुए कहेंगे कि आकाश में पूरनमासी का चाँद है और दर्शक इसे समझ लेंगे, क्योंकि दर्शक हमसे अधिक समझदार और हमसे अधिक प्रयोगशील है। जैसे आपको यदि मीडियम की जानकारी है, तो कोई भी नाटक

खेला जा सकता है, उसी तरह आपको अगर अपने छात्रों का दिल जीतना है, आपको उनके बीच और यहाँ तक कि अपने अन्य साथियों के बीच भी लोकप्रिय बनना है तो नाटक और रंगमंच को अपने जीवन में, अपने अध्यापन में लेकर आएँ और फिर इसका चमत्कार देखें।

रंगमंच और नाटक पर हमारा हिन्दी समाजइन विषयों और भाषा के प्रति जागरूकता से उदासीन रहता है। हिन्दी भाषा पर ही चर्चा करते हुए भूदान आंदोलन के राष्ट्रीय नेता बिनोबा भावे ने कहा है,''ये बहुत उदार भाषा है। कोई भी हिन्दी लिख-पढ़, बोल सकता है।'' और आप खुद इसे मानेंगे। यह भाषा इतनी उदार है या यूं कहें कि आप इतने उदार हैं कि कोई कितना भी हिन्दी को बिगाड़ कर बोले, कोई इसका बुरा नहीं मानता, उल्टा लोग प्रोत्साहित ही करते हैं कि आपने बहुत अच्छी हिन्दी बोली, कि धीरे-धीरे आप इससे भी अच्छी हिन्दी सीख जाएंगे। बल्कि, आपकी अपने स्टाइल से बोली गई हिन्दी आपकी हिन्दी की पहचान बन जाती है कि यह रमेश वाली हिन्दी है या नारायनण वाली। आप किसी दूसरी भाषा को इतना बिगाड़ कर नहीं बोल सकते हैं।...फिर, इस भाषा भाषी के होते हुए हम अपनी रूढ़ियों में क्योक जकड़ें, जिससे हमारा ही नुकसान होने लगे और हमारे मेधावी बच्चे भी अपनी पूरी मेधाविता के बावजूद औरों के मुक़ाबले पिछड़ने लगें? इसका एक ही जवाब है- नाटक और रंगमंच!

3.6निबन्धात्मक प्रश्न

1. रंगमंचवनाटककीसंकल्पनाकोस्पष्टकरें। विद्यालयीशिक्षामेंरंगमंचव नाटक के महत्व को स्थापित करें।
2. नाटककेविविधस्वरूपोंकावर्णनकरें।

खण्ड -2

Block-2

इकाई 1: दृश्य कला की भूमिका एवं महत्ता

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 दृश्य कला क्या है?
1.4 सौन्दर्य
1.5 भावाभिव्यक्ति
1.6 बिम्ब एवं प्रतिबिम्ब
1.7 प्रतीक
1.8 अभ्यास प्रश्न 1
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
1.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रागैतिहासिक काल की गुफा चित्रण से लेकर वर्तमान की डिजिटल आर्ट (कला) तक नाना रूपाकारों में दृश्यकला का इतिहास उजागर होता आया है। दृश्यकलाऐं इतिहास के पुख्ता साक्ष्य जुटाने में अति सहायक होती रहीं है। दृश्यकला के अन्तर्गत आज कई समकालीन एवं व्यावसायिक कलाऐं आती है। ये सभी कलाऐं तथा इसकी उप कलाऐं दोनों ललित कलाओं और व्यावसायिक कलाओं की क्रमशः उच्चतमस्तर एवं साज-सज्जा की ओर अग्रसर होती है। ईसाई कला, बौद्ध कला, इस्लामिक आर्ट, हिन्दूवादी कला, यूरोपियन एवं पश्चिम कला आदि के अतिरिक्त लोक कला एवं जनजातीय कलाओं में दृश्यकला के विभिन्न रूपाकार एवं विषय दिखाई देते हैं। देश, समय व काल के साथ-साथ दृश्य कलाओं के स्वरूप परिवर्तित होते आये हैं।

दृश्य कला, कला का वह रूप है जिसमें कलाकार की अभिव्यक्ति हमारे आस-पास साकार रूप से दिखाई देती है। इसके विभिन्न रूपों को देखने का आनन्द चक्षुओं द्वारा प्राप्त होता है। जो अभिव्यक्ति में भी सहायक होती है इसलिए इसे दृश्य कला कहा जाता है। जिनका संबंध विशेष रूप से कलाकार की कलाकृति में अभिव्यक्त रूपाकारों पर निर्भर होता है। इसे जानने के लिए हमें यह जानना आवश्यक है कि कला क्या है?

भारतीय कला शास्त्र का पहला प्रामाणिक अभिलेख विष्णुधर्मोत्तरपुराण का तृतीय खण्ड है। इसमें लेखक ने चित्र, मूर्ति, संगीत, नृत्य तथा काव्य कला के अंग-उपांगों का सविस्तार विवेचन-विश्लेषण करने के अतिरिक्त कला के मौलिक प्रश्नों पर भी प्रकाश डाला है। जिसमें कला का उद्देश्य, कलाओं का अन्तः संबंध, कला का विषय, कला और भावाभिव्यक्ति, कला सृजन की प्रक्रिया तथा कला के माध्यम-उपकरण आदि प्रमुख है।

कामसूत्र में चौसठ प्रकार की कलाओं का वर्णन किया गया है। कला के संदर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि अपने शरीर, मन और मस्तिष्क के द्वारा मनुष्य जो भी कार्य अपनी चेष्टा से कर सकता है वही कला है और इस कार्य को बखूबी से करने वाला मानव कलाकार है। किया जाने वाला प्रत्येक कार्य इतने सूक्ष्म, सरल, आर्कषक तथा प्रभावशाली ढंग से सम्पन्न हो कि दूसरों को एक सुखद अनुभूति या प्रेरणा पैदा कर सके, यही कला है। यद्यपि कला मानव जीवन की एक अनन्त और अनादि बहस है।

कला एक मानवीय क्रिया है। कला सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है, कला भावनाओं और कल्पनाओं का समिश्रण भी है, शिक्षा का वाहन भी है कला, कला के संबंध में अज्ञ रहने के कारण मनुष्य अपनी बुद्धि का समतोल खो बैठता है। प्रसिद्ध कलाविद् आनन्दकुमार स्वामी कहते हैं कि कलाकार कोई विशेष प्रकार का मनुष्य नहीं होता बल्कि हर मनुष्य एक विशेष प्रकार का कलाकार होता है। वह जिस समाज में रहता है उसमें उसकी कला जन्म लेती है। कला समाज विशेष में उपज कर वह सभी समाजों को संबोधित करती है।

कला, जो कल थी आज है और वह कल भी रहेगी। यह नहीं भुलाया जाना चाहिए कि मानव के मानव रूप में बचे रहने में कला का विशेष महत्व है। कला और किसी भी कलाकृति का भी यह सर्वोत्तम गुण होता है कि वह कभी भी निःशेष नहीं रहती। कला के उच्चतम स्तर में दृश्यकला का अधिकाधिक समावेश होता है।

दृश्य कलाओं में एप्लाइड आर्ट का विशेष महत्व है। व्यावहारिक कला (एप्लाइड आर्ट) या व्यावसायिक कला (कार्मसियल आर्ट) में जन-जीवन के दैनदिनी उपयोग की वस्तुओं व उनके उत्पादों को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने में मदद करते हैं। इसमें विज्ञापन कला (एडवरटाइजिंग आर्ट) की बहुत बड़ी भूमिका होती है। इसमें जन-सम्प्रेषण के माध्यम से वस्तु अथवा सेवाओं के उत्पादक विभिन्न विज्ञापन माध्यमों द्वारा आकर्षक संयोजनों में संदेश प्रसारित करते है। इसमें पत्र-पत्रिकाओं, पोस्टर, सिनेमा तथा टी0वी0 रेडियो आदि के माध्यम से विज्ञापन देते हैं। देखने-सुनने के बाद उपभोक्ता विज्ञापन के प्रभाव से उस वस्तु या सेवा को क्रय करने का मन बनाता है। किसी वस्तु अथवा सेवा का विज्ञापन किस प्रकार उपभोक्ता तक संप्रषित होकर, सामान्य उपभोक्ता के वस्तु अथवा सेवा का क्रेता बना देता है वह विज्ञापन कला की दक्षता को दर्शाता है। समाज में प्रत्येक उपभोक्ता अथवा सेवाएं, किसी न किसी आर्थिक वर्ग के उपयोग के लिए उत्पादित की जाती है। कुछ वस्तुएं मानव की

सामान्य आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व करती है तो कुछ सुविधाओं और कुछ विलासताओं की श्रेणी में आ जाती है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1. दृश्य कला क्या है? इसे समझ सकेगें।
2. कला अभिव्यक्ति की महत्ता जान सकेगें।
3. भावनाओं की अभिव्यक्ति को समझ सकेंगें।
4. समाज में दृश्य कला के योगदान को सकेंगें।
5. ललित कला व उपयोगी कला के अन्तर को समझ सकेंगें।

1.3दृश्यकलाक्याहै?

चित्रकला, मूर्तिकला तथा स्थापत्य कला सभी को एक साथ दृश्य कला या रूपप्रद कला के नाम से जाना जाता है। ये सभी अपने स्वरूप में प्रत्यक्ष व पृथक-पृथक रूप से हमें चित्र, मूर्ति व वास्तु में दिखाई देती हैं। चित्रकला मूर्तिकला, व वास्तुकला ये सभी उच्चस्तर की कलाएँ दृश्य कला या विजुअल आर्टस के नाम से ललित कला के अन्तर्गत आती हैं।

दर्शक जितनी बार दृश्य कलाओं के सनिक्कट जायेगा उतनी बार आनन्द के साथ कुछ नए अर्थ, आशय, मूल्य, मर्म अवश्य पायेगा। दृश्य कला व श्रव्य कला दोनों ललित कला के अंग है जिसका सर्वप्रथम वर्गीकरण हीगल ने किया। इस के अतिरिक्त व विपरीत उपयोगी कला के स्वरूप को भी नाम दिया। उपयोगी कला जिसे आज एप्लाइड आर्ट के रूप में जाना जाता है।

हीगल के वर्गीकरण के आधार पर पाँच ललित कलाऐं मान्य है जो वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला और काव्य-कला नाम से अभिहित है। वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला ये कलाऐं दृश्य कला के अंर्तगत आती हैं।

ललित कलाओं के लिए पाणिनि ने शिल्प शब्द का प्रयोग किया है, जो मूलतः कला कौशल का बोधक रहा। शिल्प का विभाजन पाणिनि ने चारू तथा कारू दो रूपों में किया है। चारू शिल्प के अन्तर्गत संगीत आदि ललित कला का अन्तर्भाव आता है तथा कारू शिल्प में कुम्भकार, सुवर्णकार आदि लोगों के क्रिया कौशल का भाव दिखाई देता है। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' और बौद्ध ग्रंथों में 'शिल्प' शब्द का प्रयोग उपयोगी और ललित दोनों प्रकार की कलाओं के लिए हुआ है।

उपयोगी कला के अन्तर्गत व्यवसाय में कला को प्रत्येक क्षेत्र में अधिकाधिक आर्थिक दृष्टि के रूप में लिया जाता है।

हीगल के अनुसार- यह एक ऐसा विषय है जिसके अर्न्तगत सौन्दर्य का सम्पूर्ण क्षेत्र आ जाता है और स्पष्ट रूप से कहें तो इसका क्षेत्र कला का या कहना चाहिए कि, ललित कला का क्षेत्र है हमारे अभिप्रेत अर्थ को पूर्णतः व्यक्त करने वाला शब्द है कला-दर्शन अथवा ललित कला- दर्शन।

स्पष्ट है कि जिन कलाओं का आनन्द हम देखकर ग्रहण करते हैं उन्हें दृश्य कला या रूपप्रद कला भी कहा जाता है। जो ललित कला का एक अभिन्न अंग है। आनन्द और सौन्दर्य की साधना कला है। स्पष्ट है कि दृश्यकला में यह कला साधना चित्र, मूर्ति, तथा स्थापत्य के र्निमाण से ही मिलती है। बारंबार दृश्यकला न कह कर कला कहने से भी यह परिपूर्ण हो जाता है। कला में मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति करता है। जो सत् है, शिव है, सुन्दर है वही कला है। सहज प्रवृत्ति कला का आधार है।

टालस्टॉय के अनुसार - कला एक मानवीय चेष्टा है, जिसमें एक मनुष्य अपनी उन भावनाओं को जिनका उसने अपने जीवन में साक्षातकार किया हो, ज्ञानपूर्वक कुछ संकेतों के द्वारा प्रकट करता है और उन भावनाओं का दूसरों पर प्रभाव पडता और वे भी उसकी अनुभूति कराते हैं। डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल का मानना है कि कला भावों का पृथवी पर अवतार है। पालक्ली का मानना है कि कला एक अद्भुत दार्शनिक है जिसमें कई रास्ते हैं जो कल्पना, तर्क, ज्ञान और ईश्वरीय सहायता से मिलती है।

कला अनुकरण है, अरस्तू ने कहा। कला सत्य की अनुकृति की अनुकृति है, प्लेटो मानते है। क्रोचे कहते है कि कला वाह्य प्रभावों की अभिव्यक्ति है। हर्बर्ट रीड का मानना है कि कला संग्रहालयों में नही, हमारे चारों ओर बिखरी हुई है। इसे परिभाषित करें तो कह सकते है कि कला प्रसन्न करने वाले रूपों के निर्माण का प्रयत्न है। महादेवी वर्मा के अनुसार कला के निर्माण में जीवन निर्माण का लक्ष्य छिपा रहता है। कला क्या है ! एक अनन्त, अनादि बहस है, क्योंकि यह गणित नहीं है जिसके हिसाब में दो-और-दो का जोड़, सिर्फ चार ही सम्भव हो। कला में वह पाँच भी होता आया है, हो सकता हैः तीन भी, क्योंकि इस जोड़ का सम्बन्ध पूर्व-निश्चित-प्रतिज्ञाओं, सिद्धान्तों से कम और अन्धकार में लगाई गई 'हवाई छलांग' से ज्यादा है। ऐसा हेमन्त शेष मानते है। प्रसाद के अनुसार श्रेष्ठमयी प्रेम रचना कला है। कला केवल यथार्थ का नाम नहीं है। उसकी खूबी यही है कि वह यथार्थ प्रतीत हो, यह प्रेमचन्द्र ने कहा है। यद्यपि कला में कल्पना, फैंतेसी भी होती है। कला समाज का दर्पण भी है। कला सौन्दर्य से परिपूर्ण भी है।

1.4सौन्दर्य

भारतीय कला दर्शन में सौन्दर्य को 'सौन्दर्यशास्त्र' के एक नवीन शब्द के रूप में लिया जाता ह बी0 एल0 सक्सेना के अनुसार पहले भारतीय वाड्.मय में इस शब्द का प्रयोग नहीं मिलता ह हिन्दी साहित्य में इसका प्रयोग 'एस्थेसिस' के पर्यायवाची रूप में किया गया ह 'एस्थेसिस' शब्द यूनानी भाषा के 'ऐस्थेसिस' शब्द से उत्पन्न हुआ ह जिसका अर्थ ह ऐन्द्रिय सम्वेदना। इस प्रकार 'ऐस्थेटिक्स' का शब्दार्थ होता ह ऐन्द्रिय सम्वेदना का शास्त्र। किन्तु आधुनिक दार्शनिक इसे विज्ञान मानते ह और उनके अनुसार सौन्दर्यशास्त्र ऐन्द्रिय सम्वेदना का विज्ञान ह, जिसका लक्ष्य सौन्दर्य ह दृश्य कला में सौन्दर्य का गहरा स्थान ह सौन्दर्य एक मानसिक अवधारणा ह हमारी कला कौशलता अथवा अभिव्यक्ति, बुद्धि अथवा भाव के सहयोग से वस्तुओं के रूप को विश्लेषण के द्वारा सुन्दर अथवा कुरूप मानती अथवा बनाती हैं। तर्क के द्वारा विविध अनुभूतियों को स्पष्ट रूप से समझा जाता ह बुद्धि और भावना में वही संबंध ह जो सत्य और सौन्दर्य में पाया जाता ह मानव ने अपने विवेक के द्वारा सौन्दर्य को समझा ह ब्यूटी लाइज इन द आइज ऑफ बीहोल्डर अर्थात् सौन्दर्य (सुन्दरता) देखने वाले की आँखों (दृष्टि) में होता ह

1.5भावाभिव्यक्ति

भावाभिव्यक्ति में कला के साथ रस का गहरा सम्बन्ध ह 'रस' शब्द का प्रचलन आज अति सरल और सामान्य रूप में पाया जाता ह, रस का प्राचीनतम प्रयोग किसी भी पदार्थ के जलीय-तत्व के लिये किया गया ह वैदिक युग में रस का सामान्य प्रयोग वनस्पतियों के रस के रूप में ही किया गया ह

''विभावानुभावव्यभिचारी संयोगाद्रसनिष्प''

-भरतमुनि, नाटयशास्त्र,

उपर्युक्त सूत्र काव्य के रस की पूर्ण परिभाषा प्रस्तुत करता ह रस से जिस भाव की अनुभूति होती ह वह रस का स्थायी भाव होता ह जिसमें विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से स्थायीभाव रस को प्राप्त होते हैं। अर्थात्-विभाव, अनुभाव और संचारीभाव ही रस की सामग्री हैं। इन सबके संयोग से ही रस की निष्प बतलायी गयी ह

विभाव विशेष रूप से रस को प्रकट करते हैं, उन्हें रस का उत्पादक भी कहा जाता ह जिस वस्तु के सहारे रस की उत्प होती ह उसे आलम्बन-विभाव कहते हैं, जो वस्तुयें रस को उद्दीप्त करने में सहायक होती ह उनको उद्दीपन-विभाव कहते हैं। उदाहरणार्थ- सुन्दर वातावणर में शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त के मन में प्रेम भाव उत्पन्न हो गया। इसमें शकुन्तला आलम्बन विभाव ह, क्योंकि उसके कारण ही दुष्यन्त के मन में प्रेम भाव उत्पन्न हुआ; और सुन्दर वातावरण उद्दीपन-विभाव ह,

क्योंकि उसने दुष्यन्त के प्रेम भाव को उद्दीप्त किया अर्थात् बढ़ाया। (जिसके मन में रस उत्पन्न होता है उसे आश्रय कहते है, यहाँ दुष्यन्त आश्रय है।)

आश्रय के मनोभावों को प्रकट करने वाली शारीरिक चेष्टायें अनुभाव कहलाती है। अस्थायी और संचरणशील मनोविकारों को संचारीभाव अथवा व्यभिचारीभाव कहते हैं। ये अनियमित रूप से चलते है और रस के अनुभव में सहायक होते है। ये समुद्र की तंरगों की भाँति आर्विभूत तथा तिरोहित होते रहते है और स्थायीभाव के पोषक होते है। आचार्योंने इनकी संख्या 33 मानी है, जो निम्नलिखित है-

निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, श्रम, मद, धृति, आलस्य, विषाद, मति, चिन्ता, मोह, स्वप्न, विबोध, स्मृति, अमर्ष, गर्व, उत्सुकता, अवहित्था, दीनता, हर्ष, क्रीड़ा, उग्रता, निद्रा, व्याधि, मरण, अपस्मार, आवेग, त्रास, उन्माद, जडता, चपलता और वितर्क।

भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में श्रृंगार, हास्य, करूण, वीर, वीभत्स, रौद्र, भयानक, अद्भुत, शान्त, वात्सल्य रस के बारे में उल्लेखित किया आगे चल कर इनमें शान्त रस को मिला कर नवरसों की स्थापना हुई। कुछ विद्वान इसमें वात्सल्य को जोड कर इसे दसवां रस मानते है। रस और उनके स्थायी भाव के संबंध निम्नलिखित हैं-

रस - स्थायीभा

श्रृंगार - रति

हास्य - हास

करूण - शोक

वीभत्स - जुगुप्सा

रौद्र - क्रोध

भयानक - भय

वीर - उत्साह

अद्भुत - विस्मय

शान्त - निर्वेद

वात्सल्य - स्नेह।

1.6बिम्बएवंप्रतिबिम्ब

बिम्ब क्या है ? अंग्रेजी में प्रायः इसे 'इमेज' के अर्थ में लिया जाता है। इमेज किसी व्यक्ति या पदार्थ की प्रतिकृति भी हो सकती है। यह मूर्त और दृष्ट प्रत्यंकन भी हो सकता है जो एक पदार्थ के लिए किसी ऐसे मूर्त अथवा अमूर्त का प्रयोग हो सकता है जो उसके अत्यधिक समान हो अथवा उसे

व्यंजित करता हो, जैसे मृत्यु के लिए निद्रा का प्रयोग इसके एक बिम्ब को दर्शाता है। बिम्ब के संदर्भ में विद्वानों ने कहा है कि बिम्ब चेतन स्मृतियां हैं जो इंद्रिय-बोध की मौलिक उत्तेजना के अभाव में उस इंद्रिय-बोध को संपूर्ण रूप में या आंशिक रूप में पुनरूत्पादित करती है। काव्य में भी इनका भावगर्भित शब्द चित्रण दिखाई देता है। बिम्ब ऐंद्रिय माध्यम द्वारा आध्यात्मिक अथवा बौद्धिक सत्यों तक पहुँचने का मार्ग है।

जब हम किसी वस्तु को दर्पण के सामने रखतें हैं तो वस्तु से चलने वाली प्रकाश किरणे दर्पण के तल से परावर्तित होकर हमारी आंखों पर पड़ती है जिससे हमें वस्तु की आकृति दिखाई देती हैं। इस आकृति को ही वस्तु का प्रतिबिम्ब कहते हैं। बिम्ब एवं प्रतिबिम्ब एक दूसरे के पूरक हैं।

बिम्ब के महत्व को प्रतिपादित करते हुए डॉ0 राम लखन शुक्ल ने अपनी पुस्तक भारतीय सौन्दर्य शास्त्र का तात्विक विवेचन एवं ललित कलाओं में बिम्ब एवं प्रतीक को विद्वानों के विचारों के साथ बखूबी उजागर किया है। डॉ0 रामलखन शुक्ल के कथनानुसार बिम्ब प्रकाश में आई भावनाओं का ही प्रत्यंकन या रूपायन है, जो समस्त कलाओं में पुराकाल से ही दर्शनीय है, वस्तुतः बिम्ब की कल्पना आधुनिक है, किन्तु यह धारण रूप-विधायिनी प्रतिभा के साथ ही अस्तित्व में आई होगी।

बिंब के वस्तुगत स्वरूप का प्रधान रूप दृष्टि (आँख) के माध्यम से दृष्टि पटल पर चित्र रूप में उभर आता है। भागवत स्वरूप के अंतर्गत मानस - चित्र मानसिक बिम्ब में उभर कर आते हैं जिसमें किसी पदार्थ या घटना के प्रत्यक्ष ज्ञान की मूल अनुभूति के अतीत का अभिज्ञान निहित रहता है। प्रत्यक्ष अनुभव से संबद्ध बिम्बों को हमारी पांच इन्द्रिया चक्षु, श्रवण घ्राण, रस तथा स्पर्श द्वारा बखूबी ग्राह्य कर संप्रेषित किया जाता है। परोक्ष बिम्ब के अंतर्गत अनु, प्रत्यक्ष, कल्पना, स्वप्न, तंद्रा, मिथ्या-प्रत्यक्ष आदि के आधार पर बिंब निकलकर आते हैं।

बिम्बों के बिम्ब प्राधान्य में वास्तु, मूर्ति तथा चित्रकला में संवेदात्मक बिम्ब, समानुभूतिक बिम्ब आदि की प्रचुरता रहती है, बिम्ब सहजज्ञान से प्रकाशित होते हैं। जब भावनाएँ प्रकाश में आती हैं तो कविता, चित्रकला, मूर्तिकला आदि में बिम्ब का रूप धारण करती हैं। दृश्य- बिम्बों में आकार की प्रधानता होती है। उनका स्वरूप स्पष्ट रहता है और काव्य, चित्रकला, मूर्तिकला तथा वास्तुकला में उनका प्रयोग सर्वाधिक होता है।

आद्यबिम्ब सर्वदा सामूहिक होता है, अर्थात् वह कम से कम समग्र राष्ट्रों अथवा युगों के लिए सर्वमान्य होता है। आद्यबिम्ब स्मृत्यात्मक संचयन है यह एक ऐसा संस्कार है जो असंख्य तत्सदृश प्रक्रियाओं के सारभूत तत्व के रूप में उत्पन्न हुआ है। यह मूलतः संचयन है, इस कारण यह किसी निश्चित सततप्रवाही मान्सिक अनुभूति का विशिष्ट मौलिक रूप है। मिथकीय प्रेरणा के रूप में यह सतत् प्रवाही और अनवरत प्रवाही अभिव्यक्ति है जो किन्हीं निश्चित मानसिक अनुभूतियों से उद्बुद्ध होती है या समुचित रूप से निर्मित होती हैं। यह आद्य बिम्ब शरीर- संरचना और शारीरिक क्रिया से निर्मित प्रवृति की मानसिक अभिव्यक्ति हैं और यह सतत् परिवर्तनशील और फलतः प्रभावशाली

प्रकृति-प्रक्रियाओं से भी सम्बन्धित है, क्योंकि वे मानसिक जीवन और सामान्य जीवन को प्रभावित करती हैं।

1.7प्रतीक

दृश्य कला में प्रतीक का प्रयोग प्रतिमा, चिन्ह अथवा संकेत के लिए हुआ है प्रतीक शब्द अंग्रेजी के सिंबल के समानार्थी के रूप में आता है, इसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है- वह वस्तु जो अपनी मूल वस्तु में पहुँच सके, अथवा वह मुख्य चिन्ह जो मूल का परिचायक हो।

प्रतीक किसी दूसरी वस्तु का चिन्ह होता है। वैज्ञानिक और साहित्यिक रूप में यह किसी वस्तु अथवा विचार का चिन्ह् होता है, जिसका यह संकेत करता है। शब्द का प्रतीकात्मक प्रयोग उसके संवेगात्मक प्रयोग से भिन्न होता है और कोशगत अर्थ के समरूप भी होता है। किन्तु प्रतीक एक चिन्ह भी हो सकता है जिस वस्तु या विचार की ओर यह संकेत करता है, उससे परे जो गूढ़ार्थ रहता है उसका विशेष महत्व होता है। सामान्य रूप में इसी आशय में प्रतीकवाद का प्रयोग किया जाता है। प्रतीक अनुभूति के स्वरूप का शाब्दिक संवादी कहा जा सकता है। इस रूप में वह अपनी शक्ति या जटिलता से लक्षित होता है। प्रतीक की शक्ति - प्रतीक सरलता की ओर उन्मुख रहता है और विषय - वस्तु को सरल बनाता है।

प्रतीकों के माध्यम से प्रेषित अर्थ को प्रत्येक प्रमाता अपनी शक्ति और सीमा के अनुसार ही ग्रहण कर सकता है। हीगल के अनुसार प्रतीक वाह्य अस्तित्व का ऐसा कुछ रूप आकार होता है जो इन्द्रिय के सामने प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है, जो केवल अपने मूल्य के लिए स्वीकार नहीं किया जाता, जैसे कि अपनी प्रत्यक्षता में हमारे सामने वर्तमान रहता है, वरन् वह उस वृहत्तर और साधारण महत्व के लिए स्वीकार किया जाता है जो वह हमारे चिंतन को प्रदान करता है। श्रीमती सुजान लैंगर के अनुसार प्रतीक धारणाओं की अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम होते हैं। प्रतीक अपनी विषयवस्तु की धारणा के वाहन होते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रतीक का विवेचन करते हुए लिखा है कि किसी देवता का प्रतीक सामने आने पर जिस प्रकार उसके स्वरूप और विभूति की भावना चट मन में आ जाती है, उसी प्रकार काव्य में आयी हुई कुछ वस्तुएँ विशेष मनोविकारों या भावनाओं को जाग्रत कर देती हैं। जैसे 'कमल' माधुर्यपूर्ण कोमल सौन्दर्य की भावना जाग्रत करता है। 'कुमुदिनी' शुभ्र हास की, चंद्र मृदुल आभा की, समुद्र प्राचुर्य, विस्तार और गंभीरता की, आकाश सूक्ष्मता और अनंतता की; इसी प्रकार 'सर्प' से क्रूरता और कुटिलता का; अग्नि से तेज और क्रोध का; 'वाणी' से वाणी या विद्या का; चातक से निःस्वार्थ प्रेम का संकेत मिलता है। इस प्रकार उनकी दृष्टि में प्रतीक विशिष्ट मनोविकार या भावना को अभिव्यक्त करता है।

मनोविज्ञानवेत्ताओं के अनुसार प्रतीकों की यह विशेषता होती है कि वे अचेतन मन की दमित वासनाओं को छद्म अभिव्यक्ति करते हैं और मूलतः श्रृंगारिक होते हैं। यदि उनका सम्यक् प्रकार से विश्लेषण किया जाय तो उनसे निश्चित धारणाओं और विचारों की प्रतीति होती है। उन प्रतीकों का निर्माण आकस्मिक रूप में नहीं होता, वरन् उनका संबंध व्यक्ति की मनोभूमि और अन्य परिस्थितियों से रहता है।

फ्रायड के अनुसार व्यक्ति की दमित वासनाओं, कुठाओं और उसके अंतर्मन के गुप्त रहस्यों को बहुत ही सुन्दर रूप में संकेतिक करने में स्वप्न - प्रतीकों का बड़ा महत्व है। उन्होने इसमें कामवासना की उपस्थिति अनिवार्य मानी है। कलात्मक प्रतीक अन्य सभी प्रकार के प्रतीको से अपना भिन्न महत्व रखते हुए भी स्वप्न - प्रतीक के सदृश्य होते हैं, किन्तु उनकी स्थिति स्वप्न की स्थिति न हेाकर कलात्मक होती है। कलात्मक प्रतीक बाह्य और आतंरिक जगत के होते है। तथा दोनों को जोडते हैं। वे केवल अचेतन की माँग की ही पूर्ति नहीं करते, वरन् सामाजिक तथा कलात्मक आवश्ष्यकता की भी पूर्ति करते हैं। अतः उन्हें केवल कामवासना से संबद्ध मानना एकांगी दृष्टिकोण है।

कला - प्रतीक प्रायः कल्पना जन्य होते हैं। यदि उनकी निर्मिति में बौद्धिकता का हाथ रहता है तो वह बौद्धिकता रागानुशासित होती है, जबकि विज्ञान के प्रतीक पूर्णतया बौद्धिक होते हैं। कला-प्रतीकों के अर्थ विस्तार की संभावना अधिक रहती है, क्योंकि प्रयोक्ता और प्रतिपत्ता दोनों प्रतीकों को एक समान रूप में ही ग्रहण नहीं करते, वरन दोनों भिन्न - भिन्न रूप में ग्रहण कर सकतें हैं।

हीगल के अनुसार प्रतीक अस्तित्व का ऐसा रूप-आकार होता है जो इंद्रिय के सामने प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है, जो केवल अपने मूल्य के लिए स्वीकार नहीं किया जाता, जैसे कि अपनी प्रत्यक्षता में हमारे सामने वर्तमान रहता है, वरन् उस बृहत्तर और साधारण महत्व के लिए स्वीकार किया जाता है जो वह हमारे चिन्तन को प्रदान करता है। श्रीमती सुजान लैंगर के अनुसार प्रत्येक धारणाओं की अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम होते हैं। प्रतीक अपनी विषय-वस्तु के प्रतिनिधि नहीं होते, वरन् विषय-वस्तु की धारणा के वाहन होते हैं। यह वस्तुतः धारणा है न कि वस्तु जो प्रत्यक्ष रूप में प्रतीक की अर्थ-व्यंजना कराती है। उनकी दृष्टि में प्रतीक धारणात्मक चिह्न हैं। उनका मानना है कि प्रतीक की निर्मिति के समय प्रतीक निर्माता का मस्तिष्क केवल संप्रेषण का ही काम नहीं करता, वरन् वह रूपान्तरण का काम भी करता है।

प्रतीक संदर्भ में यह भी कहा गया है कि वह चिन्ह जो सरलीकृत विषय की ओर संकेत करते समय निरर्थक नहीं बनाया जा सकता है। चार्ल्स मैरिस यह मानते हैं कि सभी प्रतीक चिन्ह ही होते हैं और प्रतीक का वास्तविक व्यतिरेक चिह्न न होकर संकेत है। बादलेयर ने प्रतीक को वैयक्तिक अभिव्यक्ति का उपयुक्त साधन माना है। बादलेयर ने यह देखने की चेष्टा की है कि सभी विषय-वस्तुएँ

अदृश्य जगत की संकुल एकता में इस प्रकार घुल-मिल जाती हैं कि मनुष्य केवल प्रतीकों के अरण्य में घूमता हुआ दिखाई देता है।

श्रीमती लैंगर मानती हैं कि कला भावना का प्रतीक है। अनेक आधारों पर प्रतीकों का वर्गीकरण किया जा सकता है। वास्तव में प्रत्येक कला में प्रतीक का अपना विशिष्ट महत्व है और यह बात निभ्रान्त रूप से कही जा सकती है कि कलात्मक अभिव्यक्ति स्वयं अपने आप में प्रतीक है। प्रतीक बहुत-कुछ वैयक्तिक भी होते हैं। इस कारण प्रयोक्ता उन्हें भिन्न-भिन्न रूप में ग्रहण कर सकते हैं। इसलिए प्रतीक का संदर्भ आवश्यक होता है।

कवि कीट्स ने दो प्रकार के प्रतीक बताये हैं। प्रथम ध्वनि प्रतीक और द्वितीय विचार प्रतीक- प्रथम में जब रूप, रंग और ध्वनि का समन्वय समुचित अनुपात में होता है तो ये सब तत्व मिलकर सर्वथा एकात्म हो जाते हैं और हमारे मन में सम्बन्धित संवेग का उद्रेक करते हैं। द्वितीय में प्रतीक बौद्धिक होने से केवल विचारों को या संवेग-संवलित विचारों को उद्रिक्त करते हैं। उनके अनुसार यदि मैं श्वेत या बैंगनी रंगों का कथन साधारण रीति से कविता में करूं तो इनसे मेरे मन में ऐकान्तिक संवेगों का उद्रेक इस प्रकार होगा कि मैं यह अन्वेषित नहीं कर सकता कि वे मुझे क्यों प्रभावित करते हैं, किन्तु यदि मैं उन्हें क्रास या कांटों के ताज के साथ प्रयुक्त करूँ तो उनसे मुझे पवित्रता या प्रभुसत्ता का बोध होता है। रंगों की प्रकृति तथा उनके प्रतीक कला संप्रेषण में अपना विशियट स्थान रखते है।
समाज में दृश्य कलाओं का महत्वपूर्ण स्थान एवं भूमिका है। जैसा कि कहा भी गया है कला समाज का दर्पण है। जहाँ कलाकार द्वारा बनाये गये रूपाकारों से बिम्ब-प्रतिबिम्बों, प्रतीकों आदि से वह इसकी वास्तविकता को सौन्दर्य के साथ उजागर करने में सक्षम होता है। दृश्य कलाऐं हमारी इंद्रियों व मन मस्तिष्क को आनन्द से भर देती है।

अभ्यास प्रश्न

1. एस्थेसिस' शब्द .....भाषा से लिया गया है। (भारतीय/यूनानी/ईरानी/चीनी)
2. हीगल ने वर्गीकरण में .....प्रकार की कला मानी है। (पाँच/आठ/सात/चार)
3. वीभत्स रस का स्थाई भाव .....है। (क्रोध/जुगुप्सा/निर्वेद/स्नेह)
4. कला एक मानवीय चेष्टा है .....का कथन है। (क्रोचे/अरस्तु/हीगल/ टालस्टॉय)
5. प्रतीक किसी दूसरी वस्तु का.....होता है। (स्थान /चिन्ह/प्रमाण/तत्व)
6. दृश्य कला में सौन्दर्य का गहरा स्थान है। (सत्य / असत्य)
7. कला सत्य की अनुकृति तथा समाज का दर्पण है। (सत्य / असत्य)
8. सौन्दर्यशास्त्र ऐन्द्रिय सम्वेदना का विज्ञान है। (सत्य / असत्य)
9. बिम्ब प्रकाश में आई भावनाओं का ही प्रत्यंकन या रूपायन है। (सत्य / असत्य)

10. भावाभिव्यक्ति में कला के साथ रस का गहरा सम्बन्ध है। (सत्य / असत्य)

1.8सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- दृश्यकला एव सौन्दर्य का अर्थ जान चुके होंगे।
- कला सबन्धित परिभाषाओ का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगें।
- भावाभिव्यक्ति व रस की महत्ता को जान चुके होंगे।
- बिम्ब-प्रतिबिम्ब एव प्रतीक का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

1.9शब्दावली

1. चाक्षुष - आँखों से सबन्धित
2. अभिव्यक्ति - अपने मनोभावों को प्रकट करना
3. उद्बुद्ध - जो अपने आपको अच्छी तरह दृश्य या प्रत्यक्ष कर रहा हो
4. सवेदना - मन में उत्पन्न वेदना दुख या सहानुभूति
5. सौन्दर्य - एक एहसास जो आँख व मन को सुन्दर लगे
6. प्रतिबिम्ब - दर्पण में दिखने वाली आकृति

1.10अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर

1. यूनानी
2. पाँच
3. जुगुप्सा
4. टालस्टॉय
5. चिन्ह
6. सत्य
7. सत्य
8. सत्य
9. सत्य
10. सत्य

1.12संदर्भग्रन्थसूची

1. डॉ रामलखन शुक्ल, भारतीय सौंदर्यशास्त्र का तात्विक विवेचन एवं ललित कलाएं, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज नयी दिल्ली
2. डॉ0 शेखर चन्द्र जोशी, कला के सिद्धान्त एवं चित्रकला के रंग, अल्मोडा बुक डिपो, वर्ष- 2005
3. डॉ0 रीता प्रताप भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2011
4. एकेश्वर प्रसाद हटवाल, विज्ञापन कला, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, वर्ष 1989

1.13 निबन्धात्मकप्रश्न

1. कला की परिभाषाओं का वर्णन कीजिए।
2. बिम्ब एवं प्रतीक का विवेचन कीजिए।
3. दृश्य कला पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई2: द्विआयामी कलाएँ

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 चित्रकला
2.3.1 चित्रकारिता के माध्यम एवं प्रविधियाँ
2.3.2 चित्रकला की शैलियाँ □ं वाद
2.4 मोजाइक
2.5 प्रिंन्ट मेकिंग (छापाचित्र कला)
2.6 कैलिग्रैफी (सुलेख)
2.7 फोटोग्राफी
2.8 अभ्यास प्रश्न
2.9 सारांश
2.10 शब्दावली
2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1प्रस्तावना

दृश्य कला के अन्तर्गत द्विआयाम एवं त्रिआयाम का बडा महत्व है। हम अपने आस-पास जहाँ भी दृष्टि डालते हैं हमें आकार एवं उनमें प्रयुक्त रंग रूपाकार इन आयामों में दिखाई देते हैं। प्रत्येक त्रिआयाम के अन्तर्गत द्विआयाम दिखाई देते हैं। द्विआयाम में मूलतः लम्बाई, चौड़ाई तथा गोलाई (जिस गहराई तथा चौड़ाई को मोटाई के रूप में जाना जा सकता है) का किसी स्थान विशेष पर रूप प्रदान किया जाता है। दृश्य कला के अन्तर्गत द्विआयामी धरातलों के रंगांकन में चित्रकला का विशेष महत्व है जो प्रागैतिहासिक काल से चित्रित होती आई है। मोजाइक कला के समावेश से चित्रकला में विशेष रूप से सुन्दर एवं आर्कषक प्रयोग हुए हैं। द्विआयामी चित्रण में प्रिन्ट मेकिंग (छापाचित्र कला) से दृश्यकला को एक नया विषय मिला है। इसमें केलिग्रैफी का भी विशेष योगदान रहा है। जिसने छापा चित्रकला तथा चित्रकला दोनों में अपनी पहचान से उसे सार्थक बनाया है। फोटोग्राफी के आविष्कार से दृश्य कला में इसका एक नित नई विधा व रूप निकलकर आया है।

चित्रकला तथा छापा चित्रकला में प्रागैतिहासिक पहचान के साथ चरणबद्ध विकास और तकनीकी विस्तार समावेश तथा गहरा प्रभाव पड़ा है। गुफा छापांकनों से प्रारम्भ हो कर ताड़ पत्र, धातु

उत्कीर्णन, वस्त्र छापाकंन से होते हुए आज आधुनिक युग में इन सब का अंकन हो रहा है। जिसमें कलाकार अपनी अलग-अलग पहचान बना रहे हैं।

2.2उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1. द्वि□ यामी दृश्य कला की महत्ता जान सकेगें।
2. चित्रकला क्या है? इसे समझ सकेगें।
3. मोजाइक कला को समझ सकेंगें।
4. प्रिन्ट मेकिंग के योगदान को समझ सकेंगें।
5. सुलेख एवं फोटोग्राफी को समझ सकेंगें।

2.3चित्रकला

चित्रकला भावों की वह अभिव्यक्ति है जो तीव्रता से मानव हृदय को स्पर्श कर, उसी भावपूर्ण एवं रसपूर्ण अभिव्यक्ति से सराबोर कर देती है अथवा कर देने का प्रयास करती है। जिसे कलाकार अभिव्यक्त करता है। चित्रकला में रेखा व रंग के द्वारा द्विआयाम□धरातल पर अभिव्यक्ति ने चित्रकला को जन्म दिया है। किस□व्यक्ति विशेष के द्वारा प्रायः शब्दों के अभाव में किस□द्विआयाम□ धरातल में किस□भ□माध्यम से रेखा एवं रंगों की आकृतियों से निर्मित आकारों का आभास ह□ कराना चित्रकला है। इसमें द्विआयाम□धरातल पर द्विआयाम□के अतिरिक्त त्रिआयाम□होने का भ्रम पैदा होता है। चित्र की सतह (धरातल) के रूप में कागज, कपड़ा, काठ, पत्थर, मिट्टी, चमड़ा, ताड़पत्र, प्लास्टिक, गत्ता आदि किस□का भ□प्रयोग किया जा सकता है। रंगाकन में भ□किस□भ□प्रकार के रंगों का प्रयोग किया जा सकता है जैसे- जल रंग, तैल रंग, एक्रेलिक रंग आदि।

वात्स्यायन के कामसूत्र में चित्रकला के छह अंग 'षडाँग' को विस्तार से बताया है जिसे पंडित यशोधर ने संस्कृत के निम्नलिखित श्लोक द्वारा वर्णन किया है-

''रूपभेदाः, प्रमाणानि, भाव, लावण्य योजनम्!
सादृश्यं, वर्णिका भंग, इति चित्रं षडंगकम्!!

अर्थात्- रूप-भेद, प्रमाण, भाव, लावण्य-योजना, सादृश्य तथा वर्णिका भ□ग चित्रकला के छह अ□ग है। जिनका प्रयोग चित्रकला में किया जाता है।

चित्रकला के मूलाधारों में अन्तराल, रूप, आकार, रेखाएँ, रंग या वर्ण, तान, पोत, डिजाइन तथा सौन्दर्यात्मक संगठन का विशेष महत्व होता है। चित्रकला के अन्तर्गत किसी भी दृश्य की जिसके

द्वारा प्रमुख रूप से मूर्ति कला व वास्तु कला का ही प्रदर्शन किया जाता है। ऊँचाई व चौड़ाई के अन्तर्गत आने वाली कलाएँ चित्रकला के अन्तर्गत आती हैं।

2.3.1 चित्रकारिता के माध्यम एवं प्रविधियाँ

मानव ने लगभग 300 वर्ष पूर्व से ही जल रंग चित्रकारी प्रारम्भ कर दी थी जो आज भी सर्वथा कलाकारों का प्रिय एवं कठिन साध्य विषय समझा जाता है। मिश्र में साइप्रेस पेपीरस (सरो के वृक्ष) नामक प्रसिद्ध पौधे की छाल में जल रंग चित्रकारी का सर्वप्रथम प्रयोग मिलता है। यद्यपि साइप्रेस का अर्थ मृत्यु सूचक चिन्ह भी है। सरों वृक्ष की छालों में लिखाई एवं इलस्टे^{a}शन के द्वारा विज्ञान, धर्म एवं जादू के प्राचीनतम इतिहास को सुरक्षित रखा गया है। भारत में भोज पत्रों ने इस रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

834 और 843 ई0 के मध्य चित्रित आदि पुरुष और आदि स्त्री की कहानी (द स्टोरी ऑफ आदम एण्ड ईव) नामक जल चित्र जिसे चर्म पत्र (लिखने या चित्र बनाने के लिए भेड़-बकरी का चमड़ा) में चित्रित किया गया था। आज भी ब्रिटिश म्यूज्यिम लंदन में सुरक्षित है। इनमें प्रयुक्त हुए रंग पारदर्शी हैं जो जल रंग की एक अति विशिष्ट पहचान हैं। उल्लेखनीय है कि खनिज सिनॉबार से लाल रंग, जले हुए सुरई के पौधे से काला रंग और जिप्सम से सफेद रंग तैयार किए जाते थे। भूरे एवं पीले रंग की मिट्टी (सिएनॉ) से गहरा पीला (ओकर) और भूरा रंग बनाया जाता था।

वर्तमान में जल रंग कलाकारों का लोकप्रिय माध्यम समझा जाता है। पोत (टेक्सचर) के पेंचीलेपन की अधिक रुचिरता के लिए स्थिर चित्रण (स्टील लाइफ) बनाना, विविध व अद्भुत रंगों की ओर ध्यान देना हो तो, पुष्प चित्रण (फ्लावर स्टडी) करना तथा दृश्य चित्रण (लैण्ड स्केप पेंटिंग) सर्वथा सर्वप्रिय विषय होता है। यद्यपि मुख चित्र (पोटे^{a}ट पेंटिंग) व लाइफ स्टडी मुख्य रूप से कठिन जान पड़ते हैं जिन्हें भी धीरे-धीरे जल रंग में विकसित किया जा सकता है।

मुख्य रूप से जल रंग माध्यम से पारदर्शिता तथा बहाना (वाशेज) का बड़ा महत्व है। इसमें वाश पेंटिंग एक अलग विधा के रूप में उभरी है। जहाँ चित्र को एक मोटे कागज में चित्रित कर बार-बार धोया जाता है। इसमें रंगांकन व धोने की प्रक्रिया छः-सात बार वांछित प्रभाव पाने तक की जाती है। जल रंग चित्रकारी 'लाइट टू डार्क' के सामान्य विचार पर चलती है। ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि इसमें गहरें रंग के ऊपर हल्का रंग नहीं चढ़ाया जा सकता है।

जब कि हल्के रंग लगाने से धीरे-धीरे उसमें उससे गहरा रंग चढ़ाना आसान है और रंग आसानी से चढ़ भी जाते हैं। रंग में पानी की मात्रा बढ़ाने से और पानी की मात्रा कम करने से रंग क्रमशः हल्का एवं गहरा होता जाता है। सफेद रंग के लिए उस स्थान पर पेपर को ज्यों का त्यों छोड़ दिया जाता है कहीं-कहीं इच्छित स्थान को ढककर मन वांछित रंग निर्मित किया जाता है। जिसे मास्किंग कहते हैं जिसें फ्लूड, वैक्स, पेपर, कटे-फटे पेपर से उस स्थान को ढक दिया जाता है। इसके बाद पूरा चित्र रंगने पर, इन्हें हटा लिया जाता है।

विभिन्न प्रकार के वाशेज, जैसे सपाट, गीले में गीला, सूखे में गीला, कृत्रिम ढक्कन, वर्गानुक्रम का अभ्यास जल रंग चित्रकारी की प्राथमिक विधियाँ हैं। ड्राई बुश, स्कैम्बलिंग तथा रोलिंग से रंगाकन निखर उठता है अनचाहे रंग को उठाने की विधि भी इसे अधिक आकर्षक बना देती है। जिसमें सोख्ता पेपर, टिशू पेपर, स्पंज, काटन वूल बड्स, फाइन रेगमाल तथा तेज ब्लेड महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विभिन्न प्रकार के जल रंग चित्रकारी पेपर अलग-अलग पोत (टेक्सचर) एवं उत्तमता (क्वॉलिटी) से चित्र को यथाशक्ति प्रदान करते हैं।

आकार, रंग और मुहावरा परिवर्तित होने के साथ-साथ जल रंग की मूलभूत पारदर्शिता स्थिर एवं अपरिवर्तनीय होती है। जहाँ चित्रकार की व्यक्तिगत सोच विषय को प्रभावोत्पादक व अभिव्यंजनापूर्ण (इम्प्रेशनिस्ट अथवा एक्सप्रेनिस्ट) बनाती है।

तैल चित्रांकन चित्रण की उच्च कोटि के अंतर्गत आता है। यह चित्रण का अत्यधिक सर्वप्रिय प्रचलित मध्यम है। भावनाओं को प्रदर्शित करने और प्रकृति के सभी पहलुओं को सूक्ष्मता से प्रस्तुत करना ही तैल चित्रांकन है। सर्वप्रथम तैल रंगों को 15वीं सदी के प्रारम्भ में विकसित कर प्रयोग किया गया। इस समय तक टैम्परा ही चित्रण का अत्यधिक सार्वभौम माध्यम था इसकी परेशानियां से उबरने के लिए तैल रंगों का आविष्कार हुआ। टैम्परा चित्रकारी की अति प्राचीन विधि है। जिसमें रंगों को बांधने के लिए जल के साथ गम अरबिक व अंडे की सफेदी का प्रयोग किया जाता हैं ये रंग अपारदर्शी होते हैं। वर्तमान में यह विधि प्रचलित नहीं है।

जल रंग के विपरीत, अपारदर्शी (ओपेग) तैल चित्रण रंगों का धीरे-धीरे लम्बे अंतराल के बाद सूखना, महीन काम का होना, रंगों की धनी उत्पादिता, आश्चर्यता, चंचलता और अत्यधिक लचीलापन प्रदान करने वाला अनूठा माध्यम है।

भारत में तैल चित्रकारी से सर्वप्रथम चित्र बनाकर प्रसिद्धि प्राप्त कलाकारों में केरल के राजा रविवर्मा (1848-1906ई0) का नाम आता है जिन्होंने अपनी शिक्षा थिओडोर जेन्सन नामक यूरोपीय चित्रकार से ली थी। राजा रवि वर्मा के कुछ प्रसिद्ध चित्रों में सुकेशी, श्रीकृष्ण और बलराम, सागर मान भंग, रावण और सीता, महात्मा गाँधी, शकुन्तला, इंद्रजीत की विजय व हरिश्चंद्र आदि हैं।

तैल रंगों को दो प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है। एक सीधे-सीधे ट्यूब से निकलकर मोटा-मोटा रंग का प्रयोग का तथा दूसरा रंग को अलसी के तेल (लिन्सीड आइल) एवं तारपीन के तेल (टरपेनटाइन आइल) में घोलकर रंग की पतली-पतली पर्त लगाकर। गहरे से हल्के रंग की ओर (डार्क टू लाइट) वाली सामान्य विचार पर चलती है तैल चित्रकारी/चित्रांकन।

ज्यादातर तैल चित्रांकन (आइल पेंटिग) कैनवस पर ही की जाती हैं यद्यपि लकड़ी कार्ड व पेपर पर भी ठीक से साइजिंग व प्राइमिंग कर की जाती है, प्रारम्भ में तैयार आइल सीट, कैनवस बोर्ड पर ही तैल चित्रण का अभ्यास उत्तम रहता है।

तैल चित्रकारी में नर्म व कठोर बालों वाले चपटे तथा गोल तूलिका (ब्रुश) से चित्रकारी की जाती है। नर्म बालों वाली तूलिकाएं नेवले की तरह एक मांस भक्षी पशु के बाल (सेबल हेयर) से बनाई जाती है। ये ब्रुश महंगे होते हैं जिस कारण इनके कृत्रिम बाल (सिनेथेटिक हेअर) वाले ब्रुश काम में लाए जाते हैं जो इसकी भाँति अत्यधिक चिकने स्ट्रोक देते हैं और बारीक काम करने में सहायक होते हैं। कठोर बालों वाले ब्रुश सुअर के बालों (होग हेअर) एवं सुअर के कठोर बालों (ब्रिसनसल) से बनाए जाते हैं।

लकड़ी के पैलेट पर रंगों को फैलाया जाता है। जहाँ तेल रखने के लिए डिपर को भी पैलेट में ही लगा लिया जाता है पैलेट नाइफ से रंगों को मिलाया जाता है। किसी-किसी चित्र को पैलेट नाइफ से ही रंग उठाकर सीधे तस्वीर पर लगाकर सारी की सारी तस्वीर नाइफ से ही पूरी कर ली जाती है, जिसे नाइफ पेंटिग कहते हैं। कैनवस को ईजल पर रखकर चित्रकारी की जाती है।

तैल चित्रांकन में स्कैम्बलिंग (चित्र के ऊपर पतला रंग चढ़ाकर इसको हल्का करना), ब्लेंडिंग (रंग मिलाना), ग्लेजिंग (रंग का दृष्टि संबंधी एकीकरण मिलान) तथा इम्पेस्टो (रंग की मोटी-मोटी पर्तों का प्रयोग) आदि विधियों द्वारा चित्र निर्मित किया जाता है।

एक्रेलिक चित्रांकन (रंग) का आविष्कार 1920 ई0 में हुआ। यह रंग मुख्य रूप में म्यूरल चित्रकारों द्वारा प्रयोग किया जाता था जो आज कैनवस में भी तैल रंग के स्थान पर बहुलता से प्रयोग हो रहा है। इस रंग की विशिष्टता यह है कि यह जलवायु एवं प्रकृति के दुष्कर थपेड़ों को सहते हुए भी अपनी प्रकृति और रंगों की चमक को समय के साथ क्षीण नहीं होने देते हैं। सन् 1950 ई0 से इसका पर्याप्त प्रयोग होने लगा। अमेरिका के प्रसिद्ध 'पोप आर्ट' चित्रकारों ने मुख्य रूप से इसको बहुलता में प्रयोग किया। इन्डी वारहोल और राय लिचस्तेंसतिंन ने अपने चित्रों के माध्यम से प्रसिद्ध डेविड हॉकनी तथा अन्य यूरोपीय कलाकारों का ध्यान आकृष्ट किया।

वर्तमान में एक्रेलिक को जल रंग एवं तैल रंग दोनों की ही भाँति प्रयोग कर जादुई प्रभाव (फल) उत्पन्न किया जाता है। एक्रेलिक रंग अत्यधिक तेजी से सूखते हैं जिस कारण 'आन द स्पाट' (स्थान पर जाकर ही) दृश्य चित्रण (लैण्ड स्केप) करने के लिए अति उत्तम हैं। एक्रेलिक रंग पारदर्शी और अपारदर्शी दोनों ही प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

एक्रेलिक चित्रण को पूर्णतया मात्र मोमीय एवं तैलीय धरातल के अतिरिक्त अन्य किसी भी धरातल पर किया जा सकता है। सर्वप्रथम धरातल पर एक्रेलिक मीडियम (माध्यम) का लेप कर अथवा सफेदी के लिए एक्रेलिक गैसों को प्रयुक्त किया जाता है। एक्रेलिक रंग को कृत्रिम राल या धूना से बनाया जाता है जिस पानी में छोड़ दिया जाता है। एक्रेलिक रंग तैल एवं पानी दोनों में से किसी एक में घोलकर जब आधार पर लगाए जाते हैं जहाँ चित्रकारी करनी हो तो ये शीघ्र ही सूख जाते हैं तथा पानी में अघुलनशील हो जाते हैं। जल से एक्रेलिक पेटिंग करने में जल रंग के ब्रुश एवं तैल से एक्रेलिक पेंटिंग करने में तैल रंग के बुरश का प्रयोग किया जाता है।

एक्रेलिक रंग की प्रयोग विधि जल व तैल रंग से भिन्न हो जाती है। जबकि इसकी प्रकृति है कि यह अत्यधिक तेज से सूखता है। जहाँ जल रंग व तैल रंग, क्रमशः थोड़े समय बाद एवं लम्बे समय के बाद ही सूखते हैं। अतः इसमें अत्यधिक तीव्र गति से अपने ब्रुश के प्रहारों के द्वारा हृदय, मन, मस्तिष्क के भावों एवं उद्गारों को अभिव्यक्त कर चित्रित करना भी ज्यादा आसान प्रतीत नहीं होता है। यद्यपि वर्तमान में कला-जगत के ज्यादातर चित्रकार, इन रंगों के साथ अभ्यास कर समय की माँग को पहचानते हुए सृजनरत हैं, सुखमय रंग देने के लिए हर रंग में जहाँ हम सबकी निगाहें भी रंगीन हो उठती हैं।

शुष्क पेस्टल व तैल पेस्टल का उपयोग चित्रण प्रक्रिया में एक अन्य माध्यम के रूप में किया जाता है। पेस्टल अत्यधिक सरल चित्रण माध्यम है। पेस्टल रंग को कागज पर सीधा प्रयोग किया जाता है। शुष्क पेस्टल रंगों से बने चित्रों के स्थायीकरण के लिए फिक्जेटिव का प्रयोग किया जाता है। शुष्क पेस्टल को मनचाहे मोटे टिन्टेड पेपर पर चित्रित किया जाता है। जैसे- भूरे, यलो ओकर, ग्रे आदि। तैल पेस्टल को प्रायः सफेद कागज पर चित्रित करते हैं।

रंगांकन के साथ-साथ चित्रकारिता में रेखांकन का भी बड़ा महत्व है। चित्रकारिता के अंतर्गत आप किसे रेखांकित करते हैं? यह महत्वपूर्ण नहीं है महत्वपूर्ण यह है कि आप कितना अधिक सीखने की चाह में आनन्द के साथ किस विषय को रेखांकित करते हैं जिसे आप अपने आस-पास इस संसार में देख रहे हैं। रेखांकन अपने आस-पास की चीजों को जानना एवं समझना प्रत्येक मानव की प्राथमिक सोच होती है। संवेदनशील प्राणी होने के फलस्वरूप कलाकार इन सभी दृश्यों को देखकर एवं महसूस कर अन्ततः अपनी-अपनी दृष्टि सृजन करता है। शायद इसीलिए संसार की प्रत्येक वस्तु रेखांकन का विषय बन जाती है।

रेखांकन एक विषयात्मक व्यवसाय है। चित्रकार इसके सिद्धांतों एवं नियमों के अधीन रेखांकनों को आसानी से दृश्यांकित कर सकता है। रेखांकनों के सहयोग से ही संयोजन को बल मिलता है जो कला का अभिन्न अंग है। रेखांकन में उपयुक्त औजारों एवं उनके प्रयोगों का अति महत्वपूर्ण स्थान है, जहाँ रेखांकन का पूर्व प्रारम्भिक ज्ञान का होना भी, रेखांकन को प्रभावशाली बनाने में सहायक होता है। वही रेखांकन में दृष्टि भ्रम, क्षयवृद्धि विषय की माप-तुलना और निगोटिव स्पेश के बारे में समुचित जानकारी होना भी नितांत आवश्यक है।

रेखांकन करने से पूर्व रेखांकित की जाने वाली विषय वस्तु, जिसे आप देख रहे हैं भली-भांति उसका निरीक्षण-परीक्षण कर बिना किसी घबराहट के उसे आकार देना चाहिए। उपयुक्त तो यह होगा कि रेखांकन से पूर्व भी हो सके दो-तीन प्रारम्भिक स्केच बनाए जाएँ। स्केच मूल रूप में कलाकार की एक महत्वपूर्ण कुंजी है। कलाकार को स्केचिंग करने में अत्यधिक अभ्यारत रहना चाहिए ? तभी वह अच्छे रेखाकंन कर सकता है। अतः यह सुनिश्चित करना चाहिए कि रेखांकन को पेपर में कहां व कैसे

रेखांकित किया जाए? यह भी निश्चित नहीं है कि दो भिन्न चित्रकार एक ही समय में एक ही वस्तु को देखकर एक सा ही रेखांकन खीचेंगे।

2.3.2 चित्रकला की शैलियाँ एवं वाद

भारतीय चित्रकला में अनेक शैलियों के अंतर्गत चित्र रचना हुई। जिसमें प्रत्येक का अलग-अलग महत्व है। शैलियों से पूर्व यहाँ का गुफा चित्रण अद्वितीय है। इनमें प्रागैतिहासिक गुफा चित्रों के अतिरिक्त अंजता एवं ऐलोरा की गुफा चित्रों का विशेष स्थान है। प्रागैतिहासिक कला केन्द्रों में मध्य प्रदेश के प्रमुख क्षेत्रों में पंचमढ़ी भीमबेडका, होशंगाबाद, सिंहनपुर, मन्दसौर, पहाड़गढ़; उत्तर प्रदेश के प्रमुख क्षेत्रों में हरनीहरन, मानिकपुर; उत्तराखण्ड के अल्मोड़ा एवं चमोली में स्थित लखुउडियार; बिहार में चक्रधरपुर तथा शाहाबाद; दक्षिण भारत में बेलारी आदि है।

गुफा चित्रों में जोगीमारा, अजंता, बाघ प्रमुख हैं। अजंता में कुल 30 गुफाएं हैं जो चैत्य (प्रार्थना हेतु) और विहार गुफाएँ (निवास व अध्ययन करने की दृष्टि से) बनाई गयी थी। अजंता की कुल 6 गुफाओं (गुफा संख्या 1, 2, 9,10,16 तथा 17) में ही चित्र विद्यमान है। अजंता में बौद्ध धर्म संबंधित चित्र बनाये गये है। मध्यकाल में निर्मित चित्रों में प्रमुख बादामी गुफा, सिन्तनवासल, एलोरा, पाल शैली, गुजरात शैली, जैन शैली तथा अपभ्रंश शैली प्रमुख हैं। पोथी चित्रण में चित्रों में चित्र के साथ-साथ एक ओर सुलेख भी है।

चित्रकला की अन्य विशिष्ट शैलियों में राजस्थानी, मुगल तथा पहाड़ी शैलियाँ एवं इनकी उपशैलियाँ हैं। राजस्थानी शैली की उपशैलियों में मेवाड़ी शैली (उदयपुर, नाथद्वारा, प्रतापगढ़ आदि); मारवाड़ी शैली (जोधपुर, बीकानेर, नागौर, किशनगढ़ आदि); हाड़ौती (कोटा, बूँदी, झालावाद) तथा [illegible]ड़ी (जयपुर, अलवर, उजियारा) हैं। राजस्थानी शैली में महापुराण, बसंत विलास, चौंर पचासिका, गीत गोविंद, लौर-चन्दा, रागमाला, राजा-महाराजाओं और शिकार से संबंधित चित्र आदि बनाये गये है।

मुगल चित्रकला में बाबरकालीन, हुमायूँ, अकबरकालीन तथा जहाँगीर कालीन चित्रों का विशेष महत्व है। अकबरकालीन चित्रित ग्रंथों में हम्जानामा, खमसानिजामी (लैला मजनू की प्रेमलीला, रामायण, रज्मनामा, नलदमन, अनवार-ए-सुहैली, शाहनामा (ईरान के राजाओं का इतिहास), तैमूरनामा (तैमूर का इतिहास), बाबरनामा (बाबर का इतिहास), जामीउत-तवारीख (मंगोलों का इतिहास), तारीखे-अल्फी (दुनियाँ का इतिहास), अकबरनामा (अबुलफजल द्वारा लिखित इतिहास) हैं। राजदरबार से संबंधित चित्र भी मुगल चित्रकारिता की विशेषता है। रागमाला संबंधित चित्र भी बनाये गये हैं। इन चित्रों में राग-रागनी के संदर्भ में लिखा गया है।

पहाड़ी चित्रकला में बसोहली, गुलेर, काँगड़ा, चम्बा, कुल्लू, गढ़वाल, मण्डी आदि इसकी उपशैलियाँ है। पहाड़ी शैली में राधाकृष्ण, राग-रागिनी, बारामासा, नायक-नायिकाओं, गीत-गोविंद,

रसिकप्रिया आदि पर चित्रांकन हुआ है। जहाँ वनस्पति तथा प्रकृति के प्रति अत्यधिक ध्यान दिया गया है।

आधुनिक भारतीय चित्रकला में कम्पनी शैली, कालीघाट या बाजार शैली तथा बंगाल शैली का विशेष योगदान रहा है। कम्पनी शैली पटना शैली के नाम से भी जानी जाती है। भारतीय आधुनिक एवं समकालीन चित्रकारों में अवनीन्द्रनाथ, नन्दलाल बसु, यामिनी राय, अमृता शेरगिल, एन0एस0 बेन्द्रे, एम0एफ0 हुसैन, सतीश गुजराल, शारदाचरण उकील, अब्दुर्रहमान चगुताई, लक्ष्मण पै, जहाँगीर सबावाला, तैयब मेहता, बी0 एस0गायतोंडे, शान्ति दवे, जी0आर0संतोष आदि है। जिन्होने भारतीय चित्रकला को एक नई दिशा दी।

यूरोप में आधुनिक चित्रकला में अनेक वादों का जन्म हुआ है। □में यर्थाथवाद, नवशास्त्रीयवाद, प्रभाववाद, नवप्रभावाद, उत्तरप्रभाववाद, प्रतीकवाद, फाववाद, घनवाद, अभिव्यंजनावाद, दादावाद व अतियर्थाथवाद तथा कुछ अन्य अप्रमुखवाद हुए। यर्थाथवाद में ऐसे कलाकार जो एक ऐतिहासिक कथाओं, पुराणों, काल्पनिक विषयों या राजा व सत्ताधारी वर्ग को छोड़कर सामान्य जनता की तथा उसके सुख-दुख की कहानियों को चित्रित करते हैं। दूसरे जो मानव या वस्तुओं को आदर्श या काल्पनिक रूप में चित्रित करने के बजाय नैसर्गिक रूप में चित्रित करते हैं। गुस्ताव कुर्वे, दोमीय, प्रमुख यर्थाथवादी चित्रकार हैं। अन्य में बार्बिजा चित्रकार, तेओदोर रूसो, शार्ल दोबिन्यी, ज्यां फ्रांन्स्वा मिले तथा कामीय कोरो हैं।

प्रभाववाद में प्रभाववादी चित्रकार मॉने, क्लोद मोने आदि कार्यशालाओं से बाहर आकर स्वच्छंद प्रकृति में विचरण कर चित्रण करने लगे। जहाँ आकाश, समुद्र, तालाब, पहाड़, हिम, पेड़, वर्षा, कुहरा खेत-खलिहान, शहरी दृश्य, स्वाभाविक अवस्था में बैठा मानव, कोने में अस्त-व्यस्त पड़ी वस्तुएं जैसी प्रभाववादियों ने अपने चारों ओर देखीं, चाहे वे क्रूर तथा भद्दी ही क्यों न हों, उनसे प्रथम दृष्टि में ही प्रभावित होकर, मन-मस्तिष्क में उत्पन्न हुए क्षणिक प्रभाव से प्रकृति के अंचल में समाये नाना रूपों को, चित्रकार ने अपने तृतीयक रंगों से चित्रित किया।

बाह्य संसार को देखकर, समझकर मुख्य रूप से प्रकृति में व्याप्त सच्चाई के साथ स्वतंत्रता से तुंरत चित्रित करना ही प्रभाववादियों का प्रमुख उद्देश्य था। प्रत्येक चित्रकार या व्यक्ति की दृष्टि भिन्न होने के फलस्वरूप एक वस्तु या दृश्य को भिन्न-भिन्न तरीके से चित्रण करने की विधि आई। जिसके फलस्वरूप एक वस्तु या दृश्य प्रति क्षण व प्रतिफल प्रत्येक चित्रकार द्वारा भिन्न-भिन्न रूप में दृष्टिगत होकर भिन्न-भिन्न प्रभावों में चित्रित होने लगा। तत्पश्चात् कलाकार चित्रों में व्यक्तिगत भावनाओं या स्वतंत्र कल्पनाओं को पिरोकर चित्रांकन करना चाहता था जिसने नव प्रभाववाद को जन्म दिया।

नव प्रभाववादी चित्रकारों में ज्योंज स्यूरत, पाल सिग्नाक तथा उत्तर प्रभाववादी चित्रकारों में पॉल सैजाँ, वानगॉग, पॉल गॉगिन आदि हैं। फाववाद में हेनरी मातिस तथा घनवाद में पिकासो, जार्ज ब्राक, ज्वां ग्री का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। □ वादों ने आधुनिक चित्रकला में समुचे विश्व की

कला को प्रभावित किया है। इसका केन्द्र फ्रांस रहा। जिसे कलाकारों का मक्का कहा जाता है। इसके बाद अमेरिका ने भी सभी का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। अमेरिका के पोप आर्ट तथा ओप आर्ट ने इसमें एक नया अध्याय जोड़ा। शनैः-शनैः मिनिमल आर्ट, मनोवर्धक कला, डिजिटल आर्ट, इंस्टालेशन आर्ट, लेण्ड आर्ट, कॉसेप्चुअल आर्ट आदि के माध्यम से कलाकारों ने नये-नये प्रयोग किये।

2.4मोजाइक

ईसाइयों द्वारा सर्वप्रथम भगवान के घर को भव्य रूप देने के लिए उसे सजाना प्रारम्भ किया। जिसमें चर्च के भीतर भित्तियों में मोजाइक का प्रयोग किया गया। यह कला प्राचीन यूनान तथा रोम में 3000 ई0पू0 से प्रारम्भ होने लगी थी। मोजाइक शब्द ग्रीक से लिया गया है। प्रारम्भ में मुख्यतः इसका प्रयोग रोम में रास्तों को सजाने के लिए होता था।

छोटे-छोटे रंगीन शीशे, पत्थर तथा अन्य सामग्री को इक्ठा कर आकृति बनाई जाती है जिसे प्रायः सुसज्जित कला अथवा आन्तरिक साज-सज्जा हेतु प्रयोग किया जाता था। रंगीन पत्थर के अथवा अन्य सामग्री के इन छोटे-छोटे टुकड़ांे को टेसेरा कहा जाता था। भिन्न-भिन्न रंगीन टुकडों से कलाकारों को सजावट हेतु मनचाहे प्रभाव मिलने लगे। मोजाइक में सुनहरे रंग का भी प्रयोग किया जाता था। यद्यपि मोजाइक प्राचीन रोमन में प्रचलित था जहाँ इसे नये तथा आर्कषक रूप में प्रयोग किया जाने लगा। रोम साम्राज्य की सेन्ट एग्नेस चर्च, गोलाकार सांता कोस्टानज चर्च, सांता प्यूडेनजियाना, सेन्ट मेरी मेजर आदि प्रमुख हैं।

प्रारम्भिक ईसाइ कला में इसका उपयोग दीवार तथा फर्श को सुसज्जित करने के लिए अत्यधिक बढ़ने लगा जो वाइजेन्टाइन साम्राज्य में व इसकी कला में खूब चमका। वाइजेन्टाइन कला का प्रयोग भवन र्निमाण के लिए भी अधिक होता था। वाइजेन्टाइन साम्राज्य में ऐथेन्स के समीप डेफ्ने, कांस्टेंटिनोपल चर्च, हागीया सोफिया चर्च आदि मोजाइक कला के उत्कृष्ट उदाहरण है।

2.5प्रिंन्टमेकिंग (छापाचित्रकला)

छापाचित्र कला को सामान्यतः 'प्रिंट अथवा ग्राफिक' नाम से पहचाना जाता है। अंग्रजी में ग्राफिक का अर्थ है लेखन-चित्रण (चित्रित या प्रतीकात्मक) यथा आर्ट या कला को एक आर्कषक उत्पादन के लिए या एक कल्पना के सृजन के लिए प्रयुक्त कारीगरी के रूप में जाना जाता है। साधारणतः ग्राफिक (छापाचित्र) कला शब्दावली पुस्तक मुद्रण व व्यवसायिक कला से ललितकला

तक की अनेक क्रियाओं का सम्मिश्रण है। आरेखी चित्रण, चिन्ह एवं प्रतीक चाहे वह चित्रित हों या छपे हों भी ग्राफिक चित्रण के अंतर्गत ही आते हैं, लेकिन यह शब्दावली विशेष रूप से छापा क्रियाओं के लिए प्रचलित है जिसमें आकृति और शब्दों या दोनों का प्रयोग किया गया है। छापा चित्रण अंततः चित्र बनाना है। इसमें केवल तकनीक की भिन्नता है जो चित्रण में अवश्य ही एक निश्चित प्रभाव उत्पन्न करती है जो कि परंपरागत कला तकनीकों में सम्भव नहीं है और यही भिन्नता छापाचित्र कला को एक विशिष्ट रूचिकर माध्यम बनाती है।

भारत के प्रमुख छापा चित्रकारों में राजा रवि वर्मा, सोमनाथ होर, अमिताभ बैनर्जी, सनतकार, शान्ती दवे, जगमोहन चोपड़ा, जय झरोटिया, परमजीत सिंह, कृष्ण आहूजा, अनुपम सूद, शैल चोयल, पॉल कोली, जयन्त पारिख, रिनी धूमाल, पी0 एस0 चन्द्रशेखर, डी0 देवराज, आर0बी0 भास्करन, तपन घोष, मोती झरोटिया, कृष्णा रेड्डी, कंवल कृष्ण, देवयानी कृष्ण, मुकुल डे, लक्ष्मणा गौड, दत्तात्रेय आपटे, जयन्त गजेरा, सुखविन्दर सिंह, सुशान्त गुहा, के0 आर0 सुब्बन्ना, आनन्दमय बैनर्जी, बूला भट्टाचार्य, कंचन चन्दर, कविता नैयर, शुक्ला सावंत, सुब्बा घोष, सुनील कुमार, जगदीश डे आदि ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने विभिन्न माध्यमों में अपनी पहचान बनायी है।

2.6कैलिग्रैफी (सुलेख)

सुसज्जित हस्तलिपि व सुन्दर लिखने की कला कैलिग्रैफी कहा जाता है। जिसे विशेष पेन, निब अथवा बुरूश से लिखा जाता है। सुन्दरतापूर्ण लिखावट जिसे सुलेख भी कहा जाता है। लेख प्रायः तिरछी, कभी कोणीय जो सौन्दर्य से परिपूर्ण होती है सुलेख की विशेषता है।

ललित कला विशेष रूप से दृश्य कला में सुलेख का बड़ा महत्व है। भारत ही नही सुलेख का विशेष रूप से चीन, जापान तथा अरब में उच्च स्थान है तथा इस्लाम, परसिया, तिब्बत आदि सभी देशों में अपने-अपने तरीके से लिखी जाती है।

प्रायः इसमें क्विल (पंख) पेन, निब, ब्रुश, साधारण पेन अथवा बॉल पेन आदि का प्रयोग किया जाता है। इसे हस्तलिपि-विद्य, खत, लिखावट, सुलेख, सुलेखन, सुलेखकला, खुशनवीसी नामों से भी जाना जाता है। विवाह तथा विशेष समारोह के अवसर पर निमंत्रण आदि में लिखावट का विशेष ध्यान दिया जाता है। ग्रंथ, जन्म-कुन्डली, नक्शा, पाण्डूलिपियों आदि में कैलिग्रैफी का विशेष प्रयोजन किया जाता है। सुन्दर प्रभावशाली, सामंजस्यपूर्ण, कौशल तरीके से लिखावट करना इसकी विशेषता है।

2.7फोटोग्राफी

19वीं शताब्दी के अंत में स्टूडियो कैमरा जिसमें फोटोग्राफिक प्लेटस प्रयुक्त होती थी। नित कैमरे के अविष्कार से कैमरों के स्वरूप व गुणवत्ता में परिवर्तन होता रहा जिससे फोटोग्राफी का जन्म हुआ। प्रारम्भ में रेखांकन के लिए आब्स्क्यूरा कैमरे का प्रयोग होता था तत्पश्चात बाक्स कैमरा 1910, काम्पेक्ट कोडक फोल्डिंग कैमरा वर्ष 1922; लैइका-सस (135 फिल्म) वर्ष 1932; कोन्टेक्स एस (एस0एल0आर0) वर्ष 1949; पोलारोइड कलरपैक 80 इंसटंेट कैमरा वर्ष 1975; डीजिटल कैमरा कैनन आई एक्स यू एस क्लास वर्ष 2000, निकोन डी1 व पहला डीजिटल एस0एल0आर0 वर्ष 2000, तथा स्मार्टफोन के अन्दर कैमरा वर्ष 2013 में आने लगे। कैमरा के नियंत्रण में फोकस, एपरचर, शटर स्पीड, व्हाइट बैलेंस, मीटरिंग, फिल्म स्पीड, आटो फोकस प्वाइन्ट आदि की बड़ी भूमिका होती है।

यह एक विज्ञान है। इसमें प्रकाश अथवा अन्य इलेक्ट्रोमेगनेटिक रेडियेशन (विद्युत चुम्बकीय विकिरण), इमेज सेंसर छवि संवेदक अथवा रसायनिक इस तरह के फोटो फिल्म के रूप में एक प्रकाश के प्रति संवेदनशील सामग्री के माध्यम से लिया जाता है। कैमरे के द्वारा फोटो खीचने की कला है। यह फोटो द्वारा चित्र खीचने की क्रिया है। इसे फोटो उतारना भी समझा जाता है। फोटोग्राफी का तात्पर्य आलोक चित्र विद्या तथा अक्सी तस्वीर खीचने की कला से भी है। जो इस कार्य को करता है उसे फोटोग्रेफर/फोटोग्राफर कहा जाता है। इसमें कैमरे का बडा ही महत्वपूर्ण उपयोग है। यह श्याम-श्वेत फोटोग्राफी, रंगीन फोटोग्राफी, डीजिटल फोटोग्राफी, सिन्थेसिस फोटोग्राफी के रूप में होती है।

उक्त के अतिरिक्त कैमरे की फिल्म तथा इसकी रासायनिक और डेवलप प्रोसेस (प्रक्रिया का विकास) का ज्ञान होना जरूरी है। फिल्म में किस सीमा तक प्रकाश को नियंत्रित करना है जो लैसं के माध्यम से उस तक पहुँचते हैं जो उसे बड़ा करने में मदद करता है। यहाँ स्टर स्पीड निर्णायक होती है। फोटो ग्लोसी तथा मेट आदि पेपर में प्रिंट किये जाते हैं। कैमरे को जिस पर रखा जाता है तिपाई (ट्राइपोड) कहते हैं। फोटोग्राफी का प्रयोग प्रत्येक अवसर पर किया जाता है। फैशन, डाक्यूमेंट्री, पत्रकारिता, विज्ञापन कला आदि में इसका भरपूर प्रयोग होता है।

फोटोग्राफी के क्षेत्र में रघुराय, रघुवीर सिंह, ए0एल0 प्रतीक, प्रबुद्धा दास गुप्ता, कुलवंत राय आदि देश के विख्यात फोटोग्राफरस हैं। उत्तराखण्ड के मनमोहन चौधरी, अनूप शाह तथा थ्रीस कपूर आदि ने इस क्षेत्र में अत्यधिक ख्याति अर्जित की है। प्राकृतिक तथा (जंगल जीवन) में फोटाग्राफी का विशेष प्रयोग होता है। मुुख चित्रण तथा जन-जीवन चित्रण में फोटोग्राफी अपना प्रमुख स्थान रखती है। वर्तमान में फोटोग्राफी ललित कला/दृश्यकला का एक अभिन्न अंग बनकर इसकी प्रदर्शनियों में भी फोटोग्राफर के ज्ञान विज्ञान एवं कला को प्रदर्शित कर रही है।

2.8अभ्यासप्रश्न

(क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. पंडित यशोधर ने चित्रकला के ..... अंग बताये है। (चार/नौ/छः/सात)

2.वात्स्यायन रचित ग्रन्थ का नाम .....है।

(षडांग/कामसूत्र/चित्रकला/जयमंगला)

3.अजंता में कुल ..... गुफाएं हैं। (20/40/10/30)

4. मोजाइक का प्रयोग.....कला में अधिक हुआ है।

(प्राचीन/इसाई/रोमन/वाइजेन्टाइन)

5. जल रंग चित्रकारी का सर्वप्रथम प्रयोग मिश्र में ..... वृक्ष की छालों में मिलता है।

(नीम/सरों/नारीयल/आम)

(ख) सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए।

1. प्रार्थना हेतु चैत्य गुफा और निवास हेतु विहार गुफाएँ बनाई गयी थी।

2.हस्तलिपि व सुन्दर लिखने की कला को कैलिग्रैफी कहा जाता है।

3.प्रारम्भ में आब्स्क्यूरा कैमरे का प्रयोग रेखांकन हेतु किया जाता था।

4.जय झरोटिया छापा चित्रकार हैं।

5. आधुनिक चित्रकला में अनेक वादों का जन्म हुआ है।

2.9सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- ❖ चित्रकला एवं द्विआयामी दृश्य कला की महत्ता का अर्थ जान चुके होंगे।
- ❖ मोजाइक कला संबंधी ज्ञान ले चुके होंगे।
- ❖ छापाचित्र कला (प्रिन्ट मेकिंग) को समझ चुके होंगें।
- ❖ सुलेख एवं फोटोग्राफी के बारे में ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

2.10शब्दावली

अक्सी - किसी भी वस्तु आदि की हू ब हू नकल

आलोक चित्र - किसी विषय-वस्तु से संबंधित चित्र

तिपाई - तीन पायोंवाली एक प्रकार की ऊँची चौकी अथवा स्टेन्ड

आब्स्क्यूरा - अंधेरा कक्ष

पोत - किसी वस्तु की बुनावट सजी बाहरी सतह

षडांग - छः अंगों वाला

2.11अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर

(क)

1. छः
2. कामसूत्र
3. 30
4. वाइजस्टीइन
5. सरों

(ख)

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. सत्य

2.12संदर्भग्रन्थसूची

1. डॉ0 शखर चन्द्र जोशी, कला क सिद्धान्त एवं चित्रकला क ग, अल्मोडा बुक डिपो, वर्ष- 2005
2. डॉ0 सुनील कुमार, छापाचित्र कला आदि स आधुनिक काल तक, भारतीय कला प्रकाशन दिल्ली, वर्ष- 2000
3. डॉ0 रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2011

2.13निबन्धात्मकप्रश्न

1. द्विआयामी कला क बार में आप क्या जानत हैं।
2. छापाचित्र कला (प्रिन्ट मकिंग) का वर्णन कीजिए।
3. फोटोग्राफी पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई 3 - त्रिआयामी कलाएँ

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 वास्तु कला
3.4 मिट्टी के बर्तन
3.5 मूर्तिकला (स्कल्पचर)
3.6 वैचारिक कला
3.7 प्लास्टिक कला
3.8 वस्त्र कला
3.9 अभ्यास प्रश्न
3.10 सारांश
3.11 शब्दावली
3.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.14 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1प्रस्तावना

दृश्यकला के विभिन्न अंगों के निर्माण से मानव समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। मानव को रहने के लिए घर चाहिए। तन ढकने के लिए वस्त्र चाहिए। घर के बाहर भी अन्य सामाजिक क्रिया कलापों हेतू भवनों की आवश्यकता होती है। मन की शान्ति के लिए मंदिर आदि की स्थापना की जाती है। इन सब के र्निमाण हेतु वास्तु कला का ज्ञान जरूरी है। मंदिर एवं भवनों को सुसज्जित किये जाने हेतू वहां मूर्तियों की स्थापना तथा र्निमाण भी आवश्यक होता है। इतिहास कहता है कि मंदिर एवं भवन र्निमाण से पूर्व मूर्तियां खुले में अथवा पेड के नीचे रखी जाती थी। ऐसे स्थानों में मिट्टी के बर्तन रखने की परम्परा भी थी। जिनके र्निमाण में उत्तरोत्तर नयी विधियां आई हैं। प्लास्टिक आर्ट इस दिशा में इसके कई आयाम खोलता है। मानव के कला विज्ञान एवं तकनीक के विकास क्रम में वैचारिक कला (कान्सेप्चुअल आर्ट) आज एक नूतन विषय है। इन सबका उल्लेख इस पाठ में है।

3.2उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

1. वास्तु कला की महत्ता जान सकेगें।
2. मूर्तिकला क्या है? इसे समझ सकेगें।
3. मिट्टी के बर्तन व प्लास्टिक कला संबंधि कला को समझ सकेंगें।
4. वस्त्र कला के योगदान को समझ सकेंगें।
5. वैचारिक कला को समझ सकेंगें।

3.3वास्तुकला

भारतीय वास्तु कला में मौर्य, गुप्त, मुगलकाल आदि का बड़ा योगदान है। मौर्यकालीन वास्तुकला के प्रमुख उदाहरणों में पाटलिपुत्र का मौर्य राजप्रसाद, और नागार्जुनी पहाड़ियों की गुफाएँ, ईंटों से निर्मित बौद्ध स्तूप, अशोक के शिलास्तम्भ आदि प्रमुख हैं। राजप्रसाद की प्रशंसा करते हुये यूनानी राजदूत 'मैगस्थनीज' ने कहा था कि, वह राजप्रसाद 'सीरिया राज्य के सूसा' और 'एकबटाना' के राज्य महलों से भी अधिक सुंदर है। पहाड़ियों में दो गुफाओं में मौर्यकालीन मूर्तिकला के सुंदर नमूने मिलते हैं 'सुदामा गुहा' तथा 'लामेश गुहा'। मौर्यकालीन स्तूपों में सारनाथ की धर्मराजिका स्तूप, साँची का विशाल स्तूप, तक्षशिला का धर्मराजिका स्तूप ईंटों से निर्मित कराये गये है। सारनाथ में अशोक ने बुद्ध के कई स्मारक बनाये जैसे 'धर्मराजिका स्तूप' एवं 'सिंह स्तम्भ' संभवतः 'धमेख स्तूप'।

मौर्ययुग के बाद कला का 'क्लासिकल युग' प्रारम्भ हुआ। इस युग में कला के स्थानीय देश के स्थान पर भौगोलिक विस्तार के कारण कला का सर्वदेशीय रूप उभरने लगा। इसके अंतर्गत मध्यदेश में 'भरहुत' और 'साँची' उत्तर-पूर्वी भारत में 'बोधगया तथा उड़ीसा के क्षेत्र', दक्षिण भारत में 'अमरावती' और 'नागार्जुनकोण्ड' तथा पश्चिम भारत में 'काले', 'भाजा', 'नंदसुर', 'पीतलखोरा' आदि स्थानों पर विशाल बौद्ध स्तुपों और गुहा चैत्यों का निर्माण संभव हुआ।

भारतीय स्थापत्य कला में मंदिरों का महत्वपूर्ण स्थान है। इन मंदिरों का विख्यात सौन्दर्य एवं भव्यता देखने योग्य रहती है। कहा जाता है कि मंदिर की संकल्पना भवन के रूप में न होकर वास्तु पुरुष अथवा देवता के रूप में की गई। इसीलिये मंदिर के विभिन्न अंग, पुरुष अंगों के समान कल्पित किये गये हैं, जैसे-चरण चौकी (अधिष्ठान या चबूतरा), पाद, जंघा, कटि, वक्ष, स्कन्ध, ग्रीवा, ललाट, मुख, नासिका, शिखर आदि। जिस प्रकार जीवात्मा के बिना शरीर निष्प्राण होता है, उसी प्रकार देवता (देवमूर्ति) की प्राण-प्रतिष्ठा के बाद ही मंदिर को देवालय समझा जाता है।

गुप्तकालीन मंदिरों को दो कोटियों प्रथम गुहा मंदिर तथा द्वितीय संरचनात्मक मंदिर के रूप में विभिक्त किया गया है। गुहा मंदिर पहाड़ी चट्टानों को काट-तराशकर आवास के लिए गुफाएँ बनाने का प्रचलन मौर्य काल से मिलता था। शुंग सातवाहन काल में पश्चिमी घाट में नासिक, कार्ले, बेडेसा,

भाजा आदि में बौद्धों ने चैत्य तथा विहारों का निर्माण किया था। इसके पश्चात् 8वीं शताब्दी तक महाराष्ट्र के 'अजन्ता', 'एलिफेंटा' एवं 'ऐलोरा' में अनेक बौद्ध, हिन्दू तथा जैन गुफा मन्दिरों का निर्माण हुआ।

सरंचनात्मक मन्दिर अनेक चरणों में विकसित हुए। ये मन्दिर उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा आन्ध्रप्रदेश में मिलते है। इनमें देवगढ़ का विष्णुदशावतार मन्दिर, कलिंग मन्दिर भुवनेश्वर, पूरी और कोणार्क में है। भुवनेश्वर उड़ीसा में परशुरामेश्वर मन्दिर, मुक्तेश्वर मन्दिर, लिंगराज मन्दिर, जगनाथ मन्दिर, कोर्णाक का सूर्य मन्दिर प्रमुख हैं। मध्य प्रदेश के ग्वालियर में सास-बहु का मन्दिर, खजुराहो के मन्दिर भव्य एवं दर्शनीय है।

भारतीय मन्दिरों को मुख्य रूप से तीन शैलियों में विभाजित किया जा सकता है -

नागर शैली ये मन्दिर प्रायः शिखर मन्दिर थे। उत्तरी तथा मध्य भारत के मन्दिर नागर शैली में निर्मित किये गये थे। द्रविड़ शैली ये दक्षिण भारत के मन्दिर प्रायः द्रविड़ शैली के हैं। इनके शीर्ष या छतें प्रायः गजपृष्ठाकृत होती हैं। इनके विमान अधिक ऊँचे और बहुभौमिक गगनचुम्बी गोपुरों से अलंकृत होते हैं। बेसर शैली मध्य भारत तथा कर्नाटक के कतिपय मन्दिरों में प्रायः उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों शैलियों का सम्मिलित स्वरूप था। कर्नाटक में पट्टदकल के चालुक्य मन्दिर प्रायः बेसर शैली के माने जा सकते हैं।

मुगल स्थापत्य में ताजमहल, कुतुबमीनार, जामा मस्जिद, लाल किला, बुलन्द दरवाजा, इमामबाडा आदि का स्थापत्य भारतीय कला के रूप में महत्वपूर्ण स्थान है। गुरद्वारा, स्वर्ण मन्दिर, गिरजाघर तथा बौद्ध एवं जैन मन्दिरों व मठों का भी भारतीय कला स्थापत्य में अनूठा स्थान है।

भवनों को सुसज्जित करने में भित्ति चित्रण का विशेष योगदान है। म्यरल पेंन्टिग (भित्ति चित्रण) का सम्बन्ध भवनों की दीवारों तथा छतों के अलंकरण से है इस की दो विधियाँ है- फ्रेस्को बूनो व फ्रेस्को सेक्को। फ्रेस्को बूनो विधि में अति सफेद गीले एवं ताजे प्लास्टर पर भित्ति चित्र बनाया जाता है जिसे फ्रेस्को बूनो कहा जाता है। यह एक गीली प्रक्रिया है। भित्ति या दीवार पर प्लास्टर की अनेक पर्तों या स्तरों के भली-भाँति सूख जाने पर प्लास्टर के शुष्क कठोर धरातल पर चित्रण करने को फ्रेस्को बूनो कहते है।

फ्रेस्को बूनो चित्रण में केवल भूमिज रंगों जैसे- रामरज, गेरू तथा हिरौंजी आदि रंगों का प्रयोग किया जाता है। फ्रेस्को सेक्को यह एक सूखी प्रक्रिया है। इस विधि में फ्रेस्को बूनो की भाँति ही प्लास्टर की अनेक परत चढाकर चित्रण कार्य किया जाता है सेक्को चित्रण वाली दीवार के भीतर नमी नहीं होनी चाहिए क्योंकि इस नमी से प्लास्टर का धरातल भी नम रहेगा और रंग उस पर नहीं ठहरेंगे भित्ति के प्लास्टर पर लाल लिटमस कागज लगाने पर यदि वह नीला नहीं होता है तो भित्ति शुष्क है तथा चित्रण के लिए उपयुक्त है इसमें सभी टेम्परा रंगों (वनस्पतिक बन्धक पदार्थो जैसे-गोंद,

सरेस, दूध या अण्डे में मिश्रित रंग) का प्रयोग किया जा सकता है। बन्धक पदार्थों के प्रयोग से रंग धरातल पर चिपक जाते है।

3.4मिट्टीकेबर्तन

मिट्टी के बर्तन बनाने की कला मोहनजोदड़ो सिंधु घाटी की सभ्यता से ही दिखाई देती है। मोहनजोदड़ो व हड़प्पा से प्राप्त मिट्टी के बने बर्तन-भांडों में नुकीली किनारी के गिलास, कटोरियाँ रकाबियाँ, बोतल, श्मशान पात्र, छिद्र वाले बर्तन, बड़े संभरणपात्र तथा छोटे बर्तन अच्छी चिकनी मिट्टी के बने मिलते हैं। ये बर्तन लाल रंग करके पकाये गये हैं और प्रायः चाक पर बने हैं। बर्तन-भांडों पर काँच का ओप (चमक) चढ़ाने की प्रक्रिया का प्रचलन सबसे पहले सिंधु घाटी से ही मिलता है।

उपर्युक्त लाल या काली मिट्टी के बर्तनों पर चित्रित असंख्य लोक-अलंकरण हैं, जिनमें टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ, लहरदार रेखाएँ, तारे बाणमुख, चोफुलियाँ, चौकार, तिकोन, वृत्त, ज्यामितीय आकरों में वर्गाकार खाने, परस्पर काटती रेखाओं में मोर, मछली, जलचर, सींगदार पशु, फूल-पत्ती आदि मिलते हैं। बकरी, गीदड़, हिरण आदि चित्रित हैं। मानवाकृतियों का अंकन नहीं के बराबर है और जो भी मिला है, उनमें एक 'मछुआरा अपने कंधों पर बहंगी' उठाये है तथा एक 'शिकारी मृग का शिकार' कर रहा है।

हड़प्पा के एक 'मृत्तिका पात्र के ढक्कन' पर एक आलेखन में 'दो हिरण' अंकित है स आलेखन की पृष्ठभूमि काली है और लाल रंग से चित्रकारी की गई है। स प्रकार के बर्तन तथा मुहरें, 'दजला फरात' क्षेत्र में लगभग 1000 ई0पू0 में बनाई जाने लगी थीं। मेसोपोटमिया में नगर के अवशेष तथा मोहनजोदड़ो से प्राप्त कला सामग्री स बात की द्योतक है कि भारत का सुमेर, मिस्र, फिलिस्तीन तथा ईरान आदि से घनिष्ठ संबंध था।

'सर जॉन मार्शल' ने कहा है, यहाँ साधारण नागरिक सुविधा और विलास का जिस मात्रा में उपयोग करता था, उसकी तुलना समकालीन सभ्य संसार के अन्य भागों से नहीं हो सकती और यह कहना अतिश्योक्ति नहीं हैं कि जो प्रतीकात्मक सुंदर अलंकृत पात्र सिंध घाटी से प्राप्त हुये हैं, वह सीरिया, मिस्र, मेसोपोटामिया, पश्चिम एशिया में भी नहीं मिले हैं। आज भी देश के विभिन्न भागों में मिट्टी के बर्तन बनाने की परम्परा विद्यमान है।

3.5मूर्तिकला (स्कल्पचर)

मूर्ति को पत्थर तथा लकड़ी की कार्विंग करके बनाया जाता है। धातु तथा प्लास्टर को कास्टिंग करके भी मूर्ति बनाई जाती है। स्कल्पचर को हिन्दी में मूर्ति के अतिक्ति प्रतिमा भास्कर

शिल्प, संगतराशी, खोदकारी विद्या कहते हैं। एक ऐसा ठोस वस्तु जो किसी चीज, व्यक्ति और विचार आदि को प्रस्तुत करता हो जिसे लकड़ी, मिट्टी, धातु या पत्थर या इस प्रकार की किसी वस्तु से बनाया गया हो। इसमें संगमरमर, हड्डी, आइवरी, टेराकोटा आदि भी आते हैं। वर्तमान में लाईट रिलटेड स्कल्पचर (होलोग्राम) का प्रयोग होता है।

अनेकानेक पत्थर या धातु की छोटी-बड़ी मूर्तियां समूचे विश्व में दृश्य कला के अंतर्गत दिखाई देती है। भारत में इनका निर्माण सिंधु घाटी सभ्यता की कला से दिखाई देता है। यहाँ मोहनजोदड़ों से प्राप्त 'दाढ़ी वाले सुंदर योगी की मूर्ति', ताम्र की 'दो तवंगी' एवं एक कॉस्य की 'नर्तकी', हडप्पा से प्राप्त ''लाल पत्थर से बना पुरुष धड़'' प्रमुख हैं।

मौर्यकालीन कला (लगभग 323-187 ई0पू0) में आदमकद यक्ष प्रतिमाएँ उल्लेखनीय है। इनमें 'दीदारगंज से प्राप्त चामर धारिणी यक्षी' की अति प्रमुख है। इनके वस्त्रों में सिर पर पगड़ी, कन्धों और भुजाओं पर 'उत्तरीय' (जो छाती पर से होकर जाता है), कमर पर कटिबन्ध व घुटने के नीचे तक की धोती है। यह सुंदर, सजीव और नारी सौंदर्य का उत्कृष्टतम् रूप प्रस्तुत करती है।

कुषाण कालीन कला में दूसरी शताब्दी से छठी शताब्दी तक मथुरा शुंग और कुषाण कला व मूर्तिकला का एक बड़ा केन्द्र था तथा कुषाण नरेशों की राजधानी भी थी। जो उत्तरी भारत का एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था। यहाँ निर्मित अनेकों मूर्तियों को ''मथुरा शैली'' के नाम से जाना जाता है। मथुरा कला में विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय भी हुआ, जिसमें भारतीय कला की धार्मिकता, ईरानी कला का वाह्य सौन्दर्य तथा यूनानी मानवीय शरीर का सामानुपातिक आकर्षण इन तीनों के योग से यहाँ की चारूता अमूतपूर्व रही।

पूर्व कुषाण काल से लेकर गुप्तकाल तक की सभी मथुरा मूर्तियाँ सीकर तथा भरतपुर की खारों (खदानों) से निकलने वाले लाल बलुए पत्थर से निर्मित की गई हैं। यद्यपि यह पत्थर मूर्तिकला के लिए अधिक उपयुक्त नहीं था।

मथुरा शैली में ब्राह्मण धर्म में हिंदु धर्म की अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियों की कल्पना की गई है। जिसमें पूर्व ज्ञात शिव (शिव के विभिन्न रूप) सूर्य, लक्ष्मी, कार्तिक, गणपति, विष्णु, बलराम, इन्द्र, कामदेव सरस्वती दुर्गा (महिषामर्दिनी, सिहंवाहिनी) मातृकाओं आदि की अनेक मूर्तियाँ प्रमुख है। यक्ष और नाग की अनेक मूर्तियाँ तथा जैन धर्म की मूर्तियाँ भी मथुरा से प्राप्त हुई हैं।

भारतीय मूर्तिकला में गान्धार शैली का बड़ा महत्व है। साधारणतः पश्चिमोत्तर भारत के गान्धार क्षेत्र में विकसित होने वाली कला को 'गान्धार कला' कहा जाता है। भारतीय मूर्तिकला शैली और यूनानी मूर्तिकला के सम्मिश्रण के फलस्वरूप गान्धार शैली का जन्म हुआ।

गान्धार कला का विषय बौद्ध है और एकमात्र बुद्ध की लीलाओं से अनुप्राणित है। यहाँ एक ओर 'बुद्ध के जन्म' 'निष्क्रमण', 'सबोधिलाभ', 'धर्मचक्रप्रवर्तन' 'परिनिर्वाण' सरीखे बौद्ध विषयों का अंकन है, तो दूसरी ओर नतमस्तक वाले काल्पनिक पशु, सपक्षसिंह आदि हैं। बौद्ध प्रतिमाओं में

केश-विन्यास भारतीय परम्परा से भिन्न है तथा बाल घुंघराले दिखाए गये हैं। गान्धार के कलाकारों ने बुद्ध को अपोलो की भाँति चित्रित किया है।

गुप्तकाल धार्मिक सहिष्णुता का काल था। वासुदेव संप्रदाय से कृष्ण और बलराम की पूजा प्रारम्भ हुई। कृष्ण को विष्णु का अवतार मानने से विष्णु की प्रतिमाओं का अंकन हुआ। विष्णु के साथ-साथ शिव, सूर्य, ब्रह्मा, गणेश, कुबेर, पार्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, सप्तमातृकाएँ आदि विभिन्न हिंदू देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का सुरूचिपूर्ण अंकन गुप्तकाल में हुआ। बुद्ध-बोधिसत्व और जैन तीर्थांकरों की प्रतिमाएँ भी साथ-साथ बनती रही। सारनाथ में बुद्ध ने पहली बार उपदेश दिया था। सारनाथ का पूर्ण अभ्युदय गुप्तकाल में हुआ। वहाँ निर्मित्त धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में बैठे हुए बुद्ध की मूर्ति बड़ी आकर्षक है। शुगों के शासन काल में निर्मित शुंगकालीन मूर्तिकला का दूसरा मुख्य केन्द्र भरहुत मध्यप्रदेश के सतना जिले में स्थित है। जो मूर्तिकला की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

भरहुत में विशेष रूप से अंकन में बुद्ध की मानवीय छवि की अपेक्षा बुद्ध की उपस्थिति का आभास विभिन्न प्रतीकों, जैसे-पाद एवं छत्रयुक्त आसन, छत्र, बोधिवृक्ष, पदचिन्ह आदि द्वारा व्यक्त किया गया है। भरहुत की वेदिकाओं पर अंकित जातक दृश्यों में बोधिसत्व द्वारा विभिन्न योनियों में जन्म लेने की कथाएँ हैं, जिनमें शिलाजटित दृश्यों में मानव, पशु-पक्षी आदि के विभिन्न चारित्रिक गुण-दोषों को चित्रित किया गया है। दक्षिण भारत के स्तूपों में अमरावती का स्तूप व इसके अभिलेख, नागार्जुनकोण्डा का स्तूप तथा नेलकोण्डपल्ली का स्तूप प्रमुख हैं। जिनमें बुद्ध व इससे संबंधित विषय मिलते है।

प्रमुख भारतीय मूर्तिकारों में रामकिंकर बैज, डी0पी0 राय चौधरी, शंखो चौधरी, धनराज भगत, अवतार सिंह पवार, हिरमय चौधरी, महेन्द पाण्डया, पी0वी0 जानकी राम, अजित चक्रवर्ती, अमरनाथ सहगल, रामसुतार आदि हैं।

पाश्चात्य मूर्तिकला में ग्रीक (यूनान) तथा रोमन मूर्तिकला के नाम प्रमुख हैं। मध्यकाल में यहाँ दोनात्तेलो, माइकिल एंजिलो, डेविड आदि प्रमुख नाम है। अमूर्त मूर्तिकला में निम्नलिखित नाम उम्ब्रेतो बोसीओनी, जीन आर्प, अम्ब्रेतो जिआकोमेत्ती, सोल लेवित्त आदि नाम प्रमुख हैं। ताँबे की मूर्ति (ब्राँज स्कल्प्चर) में इच्छित आकार की माडलिंग को सर्वप्रथम मिट्टी, प्लास्टर अथवा वेक्स से की जाती है। जिसे बाद में पिघले ताँबे को पिरोये जाने के बाद हटा लिया जाता है। यह एक जटिल प्रक्रिया है।

यह चीन, दक्षिण अमेरिका, मिश्र में विकसित हुई थी। मिट्टी केा आग में पकाना टेराकोटा स्कल्प्चर कहलाता है। यह एक प्राचीन विद्या है, टेराकोटा की मिट्टी के लिए इसमें चिकनी या मिट्टी को छानकर इसमें बालू मिलाई जाती है तत्पश्चात् इसे गूँथा जाता है इस मिट्टी से बर्तन, मूर्तियाँ आदि बनाकर आग में पकाया जाता है यह टेराकोटा विधि कहलाती है। मूर्तिकला की अन्य विधियों में फाइबर कास्टिंग, सीमेंट कास्टिंग, स्टोन कार्विंग आदि आते है।

3.6वैचारिककला

कांसेप्चुअल आर्ट मुख्य रूप से आइडिया एवं विचार पर आधारित है। कला का यह अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन वर्ष 1960-1975 में नार्थ अमेरिका से प्रारम्भ हुआ। कलाकृति के निर्माण के साथ-साथ उसके ज्ञान एवं विचार की थ्योरी को महत्ता दी गई थी। इसका बीजारोपण मार्सल डचम्प की 1913 की घोषणा से हो चुका था जब उन्होंने कहा था केन वन मेक वर्कस विच वन नॉट वर्कस ऑफ आर्ट? (क्या कोई एक काम कर सकता है जो एक कला का काम नहीं होता है।) ब्रिटिश आर्टिस्ट जान लाथम द्वारा 1958 में किताबों की मूर्ति बनाई तथा लोगों के बीच समारोह आयोजित कर जलाई गई।

वर्ष 1970 में कांसेप्चुअल आर्ट एवं कांसेप्चुअल आस्पेक्टस नामक न्यूयार्क कल्चरल सेंटर में पहली प्रदर्शनी हुई। परम्परागत तरीके से चित्र एवं मूर्ति के निर्माण का बहिष्कार कर सम्पूर्ण काम को मूल आधार के साथ फोटोग्राफ्स, निर्देशों तथा वीडियोज के द्वारा प्रदर्शित होने लगा। इस काम का सीधा संबंध ऐसा आ□डिया एवं विचार, जो कला की प्रकृति पर प्रश्न चिन्ह करने में सक्रिय हो। □नके द्वारा गम्भीर राजनीतिक तथा सामाजिक विचार कला के साथ जोड़कर दिये जाने लगे जिसमें इंस्टालेशन, डिजिटल तथा परफारमेंस आर्टस तथा □समें भी आगे प्रदर्शित किया जाने वाला काम किया जाने लगा। इस काम को कलाकारों ने वर्क ऑफ आर्ट के नाम से भी प्रदर्शित किया।

कांसेप्चुअल आर्ट एण्ड इन्वायरमेंटल आर्ट से प्रेरित होकर भारत में नेक चंद सैनी द्वारा बनाया गया चण्डीगढ़ का रॉक गार्डन कला एवं पर्यावरण की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है जिसमें इंस्टालेशन आर्ट भी भरपूर रूप से कूट-कूटकर भरा पड़ा है। भारतीय मूल के केनेडियन आर्टिस्ट मनसाराम द्वारा भी माउंट आबू में कुछ ऐसी ही भावना से कार्य किया गया है जिसे उन्होंने अमेरिकन चित्रकार आर्थर सेकुन्डा के सानिध्य में रहकर स्वयं अपनी मनसा मीडिया के रूप में प्रस्तुत किया।

3.7प्लास्टिककला

यहॉ प्लास्टिक कला के अर्थ में उपयोग में हो रही उस प्लास्टिक से नहीं है जो कि अत्यधिक प्रचलित एवं हानीकारक है। प्लास्टिक आर्ट 'प्लास्टिसाइज' से निकल कर आया है जिसका अर्थ है 'मोल्ड' करना। किसी भी कला-आकार को जो त्रिआयाम में मॉडलिंग अथवा मोल्ड़िग किया जाता है वह प्लास्टिक आर्ट कहलाती है। इसका अत्यधिक सामान्य उदाहरण 'मूर्ति' है। आधुनिक समकालीन सामग्री के प्रयोग में कंकरीट, अल्यूमीनियम और फोम रबर पेपर मेसी भी आते है।

इसके अलावा प्लास्टिक आर्ट में जिसमें मिट्टी का प्रयोग होता है वह 'सेरामिक पोटरी' है। इसमें अर्थनवेयर, मेओलिका, राकू तथा स्टोनवेयर, चाइनीज पोर्सलीन और सेलाडोन प्रचलित हैं। कोलाज; पेपर आर्ट; ओरीगामी पेपर फोल्डिंग; मेटल वर्किंग, ग्लास ब्लोइंग और ग्लास आर्ट आदि अन्य प्रकार की प्लास्टिक आर्ट में आते है। इसके अतिरिक्त मोजाइक; वूड-वर्किंग; आइस स्कल्पचर और सेंड आर्ट रेत की कला ये सभी प्लास्टिक आर्ट के अंतर्गत आते है।

3.8वस्त्रकला

वस्त्र कला मानव सभ्यता के विकास के साथ प्रारम्भ हुई है। जब से मानव में वस्त्र के प्रति चेतना जागी तब से लेकर आज तक उसने उस क्षेत्र में अनेक सम्भावनाऐं ढूढी हैं। मोहनजोदाडो व हड़प्पा से प्राप्त मूर्तियों तथा तकलियों यह पता चलता है कि उस काल के लोग सूत कातना तथा उसे बुनकर कपडा तैयार करना बखूबी जानते थे। मोहनजोदाडो से प्राप्त मूर्ति जिसमें 'योगी तिपत्तिया फूल वाला शॉल ओढ़े हुए' हैं से ज्ञात होता है कि तब भी यह कला थी।

वस्त्रों में सूती, रेशमी, तथा ऊनी आदि को तैयार करने की जानकारियाँ तथा प्रयोग करना ही इसकी कला है। इसी के साथ-साथ नॉयललान, रियान यानि तरह-तरह के संश्लेषित कृत्रिम कपडे भी तैयार किये जाते है। चमडे तथा रेक्सिन के वस्त्र र्निमाण की भी अपनी एक परम्परा है। वस्त्रकला में बुनाई, रंगाई तथा छपाई के प्रयोगों द्वारा वस्त्रों का र्निमाण किया जाता हैं। प्रायः कपडों पर फूल, पत्ते, बेल-बूटे, पशु-पक्षी तथा ज्यामितीय आकारों को अंकित किया जाता है। कुछ वस्त्र इनके बिना भी तैयार किये जाते है।

वस्त्रों की रंगाई हेतु प्राकृतिक, कृतिम व रासायनिक रंगों का प्रयोग किया जाता है। ताने-बाने सैलूम अथवा मशीन द्वारा वस्त्र बनाए जाते हैं। श्वेत श्याम के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के रंगीन धागों से तद्नुसार साधारण एवं डिजाईन द्वारा कपडा तैयार किया जाता है। साधारण तैयार कपडे में ब्लॉक द्वारा वस्त्रों में छपाई की जाती है। मनचाहे रंगों मे वस्त्रों को रंगा भी जाता है।

मानव द्वारा धारण किये जाने वाले वस्त्रों को सुन्दर व आकर्षक बनाया जाता है। जिस कारण उसमें कशीदाकारी भी की जाती है जो एक अनुठी कला है। इसमें कपडों/वस्त्रों पर रंग बिरंगे धागों, कांच के टुकडों, मोतियों, शंख व सीप का प्रयोग किया जाता है। पश्चिमी राजस्थान व गुजरात के कच्छ में इसका ज्यादा प्रचलन होता है। रेशमी वस्त्रों के र्निमाण का काम उत्तर प्रदेश के बनारस, गुजरात के पाटन व भारत के अन्य स्थानों में प्रमुखतः से होता है। प्रायः गर्मी-सर्दी व अन्य मौसम हेतु तद्नुसार वस्त्रों का प्रयोग व निर्माण होता है।

ऊनी वस्त्रों के लिए कश्मीर, हिमांचल, उत्तराखण्ड तथा पूर्वोत्तर भारत के अन्य आदि राज्य प्रसिद्ध है। वस्त्र कला ने फैशन की दुनिया को एक नया आयाम दिया है। भारतीय फैशन उद्योग भी

इसमें फल-फूल रहा है। इसके रंग-बिरंगे परिधान अपनी लोक प्रियता बढ़ा रहे है। भारतीय फैशन उद्योग को बढावा देने में रोहित बाल, रितु बेरी तथा जे0जे0 बलाया आदि प्रयासरत रहे हैं।

3.9अभ्यासप्रश्न

(क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. मौर्ययुग के बाद कला का.....युग प्रारम्भ हुआ। (प्रागैतिहासिक/क्लासिकल/ पाषाण/शुंग)

2. चण्डीगढ़ का .....कला एवं पर्यावरण की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। (रोज़ गार्डन/रॉक गार्डन/हेंगिंग गार्डन/बोटनिकल गार्डन)

3. मोहनजोदाड़ो से प्राप्त मूर्ति जिसमें योगी .....फूल वाला शॉल ओढ़े हुए है। (एक पत्तिया/तिपत्तिया/द्विपत्तिया/चौपत्तिया)

4. पाश्चात्य कला में ग्रीक (यूनान) तथा ..... के नाम मूर्ति कला के लिए प्रमुख हैं। (मिश्र/ईराक/चीन/रोमन)

5. बुद्ध ने.....में पहली बार उपदेश दिया था। (पटना/गया/कुशीनगर/ सारनाथ)

(ख) सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए।

1. भारतीय मंदिरों को तीन शैलियों में विभाजित किया गया है।

2.भित्ति चित्रण की फ्रेस्को बूनो विधि एक गीली प्रक्रिया है।

3.वस्त्र कला ने फैशन की दुनिया को एक नया आयाम दिया है।

4.प्लास्टिक आर्ट प्लास्टिसाइज से निकल कर आया है।

5.कांसेप्चुअल आर्ट मुख्य रूप से आइडिया एवं विचार पर आधारित है।

3.10सारांश

अब इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

1. वास्तु कला की महत्ता का अर्थ जान चुके होंगे।
2. मूर्तिकला संबंधी ज्ञान ले चुके होंगे।
3. मिट्टी के बर्तन व प्लास्टिक कला संबंधी कला को समझ चुके होंगें।
4. वस्त्र कला एवं वैचारिक कला के बारे में ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

3.11शब्दावली

1. कांसेप्चुअल आर्ट - विचार पर आधारित कला
2. भित्ति चित्र - दीवार पर बना हुआ चित्र
3. टेराकोटा - पकी हुई मिट्टी का ठोस आकार
4. आदमकद - आदमी के कद के समान
5. यक्ष - एक अर्द्ध देवयोनी
6. कशीदाकारी - कपड़े पर कढाई करने की क्रिया या सुई धागे से बेल-बूटे बनाना या काढ़ना।

3.12अभ्यासप्रश्नोंकेउत्तर

(क)

1. क्लासिकल
2. रॉक गार्डन
3. तिपत्तिया
4. रोमन
5. सारनाथ

(ख)

1. सत्य
2.सत्य
3.सत्य
4.सत्य
5.सत्य

3.13संदर्भग्रन्थसूची

1. डॉ0 रीता प्रताप भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2011
2. डॉ0 शेखर चन्द्र जोशी, आधुनिक चित्रकला का इतिहास, प्रकाश बुक डिपो बरेली, वर्ष 2016

3.14निबन्धात्मकप्रश्न

1. मूर्तिकला अथव वास्तु कला पर एक निबन्ध लिखिए।
2. प्लास्टिक कला के बारे में आप क्या जानते है।
3. वैचारिक कला का विवेचन कीजिए।